स्वर्ण जंयती वर्ष

142
142

मरु क्षेत्र में कृषि प्रबन्धन

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
2009

प्रकाशक

डॉ. के.पी.आर. विठल

निदेशक, काजरी

संपादन

डॉ. अमल कर

श्रीमती मधुबाला चारण

डी.टी.पी.

श्रीवल्लभ शर्मा व अरविन्द वर्मा

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

फरवरी, 2009

प्रस्तावना

मरूस्थल की विशेष समस्याएँ एवं विशेषताएँ रही है। इसे उच्च प्रबन्धकीय स्थितियों द्वारा सुधारा व विकसित किया जा सकता है। रेगिस्तानी परिस्थितियों मे सुधार हेतु प्रथम आवश्यकता अनियोजित संसाधन विदोहन को नियोजित करना है। परिस्थितिक विसंगतियां यह इंगित करती है कि संसाधनों के विदोहन में अत्यन्त जागरूकता की आवश्यकता है।

उन्नत तकनीकों को अपनाते समय यहाँ की परिस्थितियों व पारम्परिक क्रियाओं को भी ध्यान में रखना होगा। मरूस्थल के आर्थिक रूप से पिछड़े किसान समय–समय पर परिक्षित तकनीकियों को ही अपना सकते हैं। काजरी पिछले 50 वर्षों से इसी प्रकार की तकनीकें विकसित करने हेतु संघर्षरत है जो आवश्यकता एवं कीमत आधारित हो और जिससे मरु भूमि के किसानों का आर्थिक स्तर उच्च हो व जिन्हें वे आसानी से अपना सकें। अनुसंधान का लाभ पूरी तरह किसानों को पहुँचें एवं किसानों के जीवन स्तर में सुधार हो यह काजरी का लक्ष्य है। इसी अनुरुप हम समय–समय पर विभिन्न प्रकाशन और पत्र पत्रिकाओं में लेख द्वारा आप को अवगत करवा रहें है तथा प्रशिक्षण, प्रसार सामग्री, किसान मेलों का आयोजन करते रहें। इसी कड़ी में '**मरु क्षेत्र में कृषि प्रबन्धन**' नामक यह प्रकाशन आपके समक्ष प्रस्तुत है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है कि यह प्रकाशन कृषि प्रसार–प्रचार अधिकारियों, किसानों एवं प्रशिक्षणकर्ताओं हेतु अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। मैं इसके प्रकाशन के लिए समस्त वैज्ञानिकों एवं सम्पादकों का आभार व्यक्त करता हूँ।

काजरी किसानों की सेवा हेतु सदैव तत्पर रही है। किसी भी प्रकार की जानकारी हेतु आप हमसे संपर्क कर सकते हैं। काजरी में एटिक व कृषि विज्ञान केन्द्र किसानों को सलाह, प्रशिक्षण, किसानोपयोगी सामग्री उपलबध करवाने हेतु कार्यरत है।

हमें आशा है इस प्रकाशन से किसानों को शुष्क कृषि प्रबन्धन में अधिक लाभ होगा। आइये हम मिलकर मरुधरा को खुशहाल बनायें।

डा. के.पी.आर. विठल

निदेशक

काजरीः एक परिचय

मरूस्थल की प्रसार रोकने हेतु भारत सरकार ने 1952 में जोधपुर मे मरु वनीकरण केन्द्र नामक एक संस्थान की स्थापना कि थी। 1957 में इस केन्द्र का पुनर्गठन मरूस्थल वनीकरण और मृदा संरक्षण केन्द्र के रूप में किया गया। वाद में मरूस्थल एवं शुष्क क्षेत्रों की समस्याओं पर अनुसंधान करने हेतु यूनेस्को सलाहकार डा. सी.एस. क्रिस्टन की प्रस्तावना पर भारत सरकार ने 1959 में एक पूर्ण संस्थान, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) का स्थापना जोधपुर में किया। अप्रैल 1966 तक इसका प्रशासनिक नियंत्रण भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के अधीन था। तत्पश्चात भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली को इसे सौंपा गया।

रेगिस्तान, मरुभूमि, धरती धोरा री इत्यादि नाम लेते ही हमारी आंखों के समक्ष ऊँचे–ऊँचे रेत के टीबे, उन पर दौड़ते ऊँटों के पद चिन्ह, गर्म व तेज हवाओं के झोंके, दूर–दूर तक पेड़–पौधों का नामोनिशान नहीं, कुछ ऐसी ही तस्वीर उभर कर आती है और इस तस्वीर को बदल कर मरुस्थल के कायाकल्प का सपना साकार करता एक अनूठा संस्थान है काजरी। जोधपुर में संस्थान के सात विभागों में बहुविषयी वैज्ञानिक टीम तथा चार क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र पाली, बीकानेर, जैसलमेर और कुकमा (भूज) में विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों में स्थान–विशेष अनुसार कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त क्षेत्र प्रबंधन, मृदा संरक्षण तथा वनीकरण क्षेत्र चांदन, भोपालगढ़, जाडन, बेरीगंगा व कायलाना में है। काजरी की अनुसंधान गतिविधियों में वे सभी तथ्य सम्मिलित हैं जो मरूस्थल के विकास से संबंधित हैं। इस क्षेत्र के स्थाई विकास का मार्ग और साधन विकसित करना इन सभी गतिविधियों का लक्ष्य है ताकि स्थायी उत्पादन व गुणवत्ता प्राप्त कर यहां की परिस्थितियों में सुधार कर समृद्धि को बढ़ाया जा सके।

काजरी मुख्यालय पर सभी सुविधायुक्त उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशालाएं, एक अतिथि गृह व हॉस्टल, सभागार व एक संग्रहालय है। संस्थान के राहेजा पुस्तकालय में 20,000 किताबें और 50,000 पुरानी पत्र–पत्रिकाओं के अंक हैं। यहाँ 150 राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाएं नियमित रूप से आती हैं। कृषि अनुसंधान सूचना पद्धति (एरिस) संस्थान में कार्यरत है जहां आधुनिक सुविधाएं ई–मेल, इंटरनेट आदि उपलब्ध है।

संस्थान द्वारा 50 वर्षों से किये जो रहे निरंतर प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही आज काजरी मरु क्षेत्रों पर अध्ययन करने वाला अंतराष्ट्रीय रूप से ख्याति प्राप्त एक अनुसंधान संस्थान है।

उन्नत टांका द्वारा मरुस्थल में वर्षा जल संग्रहण

पारम्परिक टांका – एक परिचय : टांका एक प्रकार का छोटा ऊपर से ढका हुआ भूमिगत खड्डा होता है इसका प्रयोग मुख्यतः पेयजल के लिये किया जाता है । परम्परागत तौर पर निजी टांके प्रायः घर के आंगन या चबूतरों में बनाये जाते हैं, जबकि सामुदायिक टांकों का निर्माण पंचायत भूमि में किया जाता है । चूंकि टांके वर्षा–जल संग्रहण के लिये बनाये जाते है इसलिए इनका निर्माण आंगन या भूमि के प्राकृतिक ढाल की ओर सबसे निचले स्थान में किया जाता है । परम्परागत रुप से टांके का आकार चौकोर, गोल या आयताकार भी होता है । जिस स्थान का वर्षा–जल टांके में एकत्रित किया जाता है उसे पायतान या आगोर कहते हैं और उसे वर्ष भर साफ रखा जाता है ।

बहुउद्देश्यीय उन्नत टांका – आज की जरुरत : थार रेगिस्तान में बहुत बड़े भू–भाग में आज भी पेयजल की उपलब्धता एक गम्भीर समस्या है। महिलाएँ आज भी पेयजल के लिये मीलों दूर तपती दुपहरी में जाने के लिये विवश है। इस समस्या का स्थायी समाधान निजी तौर पर टांकों में स्थानीय वर्षाजल संचयन के द्वारा ही किया जा सकता है । केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर ने पिछले दो–तीन दशकों में शोध द्वारा टांके के परम्परागत स्वरुप को बहुउद्देश्यीय, उन्नत व परिष्कृत किया है।

उन्नत टांका – संरचना एवं निर्माण : टांके या कुण्ड के निर्माण के लिये ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिये जहॉ वर्षा जल स्वतः इकठ्ठा होता हो व संग्रहण के लिये प्राकृतिक रुप में पर्याप्त आगोर या पायतान मिल सके । साफ, कठोर व एक समान ढाल वाले आगोर से कम जगह में ज्यादा वर्षा जल संग्रहित किया जा सकता है। परम्परागत चौकोर या आयताकार टांकों के स्थान पर गोल, बेलनाकार टांके अधिक मजबूत होते हैं व समान क्षमता के लिये कम निर्माण सामग्री की आवश्यकता होती है । निजी या सार्वजनिक टांके की जल संग्रहण क्षमता का निर्धारण निम्न सूत्र द्वारा किया जा सकता है ।

आवश्यकता (लीटर) = परिवार के सदस्य x 2555 + पशुधन x 8125 + पौधों की संख्या x 120

टांका क्षमता (लीटर) = आवश्यकता x 1.10

टांके की क्षमता का निर्धारण करने के बाद टांके की गहराई व गोलाई (व्यास) का निर्धारण किया जाता है । सामान्यतः टांके 3 से 5 मीटर गहरे बनाये जाते हैं जो जमीन के अन्दर की मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करते हैं । अधिक कठोर मिट्टी या मुड़ में ज्यादा गहराई के साथ खुदाई की लागत बढ़ जाती है व मजबूती प्रदान करने के लिये अधिक निर्माण सामग्री की आवश्यकता होती है। एक बार गहराई का निर्धारण करने के बाद टांके की गोलाई (व्यास) निम्न सूत्र द्वारा निकाली जा सकती है ।

$$\text{गोलाई (मीटर)} = \sqrt{\text{क्षमता (लीटर)} \times 78.7 \times \text{गहराई (मीटर)}}$$

निर्माण कार्य में चूने के स्थान पर सीमेन्ट का प्रयोग करने से टांके की आयु बढ़ जाती है । पचास हजार लीटर तक क्षमता वाले टांको के निर्माण में 1.25 से 1.50 फीट मोटी सीमेन्ट पत्थर की दीवार व 1 फुट मोटा सीमेन्ट कंकरीट का तला पर्याप्त मजबूती प्रदान कर सकता है । उन्नत टांकों में वर्षाजल के आगमन व अतिरिक्त पानी के निकास के लिये आवक व जावक का प्रावधान होता है। आवक स्थान पर बहाव के साथ आई मिट्टी को रोकने के लिये एक छोटी कुण्डी (सिल्ट ट्रेप) बनाई जाती है । आवक जावक स्थान पर छोटे अंवाछित जानवरों के टांके में प्रवेश पर रोक के लिये उचित आकार की लोहे की जाली लगाई जाती हैं। आगोर से वर्षाजल को सीधे टांके की बाहरी दीवारों में रिसने से रोकने के लिये टांके के चारों ओर 2 से 2.5 फीट चौड़ी सीमेन्ट कंकरीट

की एक कालर बनाई जाती है । रेगिस्तान की औसत वर्षामान व सामान्य आगोर प्रकृति के अनुसार 50,000 लीटर क्षमता के टांके के भरण क़े लिये 0.5 से 0.6 बीघा आगोर पर्याप्त होता है । टांके के आगोर को साफ, एक समान ढलान वाला व कठोर करके वर्षाजल के बहाव को बढाया जा सकता है । पक्के मकानों या हवेलियों के निकट बने टांको में भू–स्थित आगोर के साथ साथ छतों का पानी भी पाइपों के द्वारा टांके में डाला जा सकता है । भू–स्थित आगोर की तुलना में पक्की छतों से वर्षा जल का ज्यादा बहाव होता है व संग्रहित पानी में अशुद्धियां भी कम होती है । अतः अनुकूल परिस्थितियों में टांका निर्माण करते समय वर्षाजल संग्रहण के लिये छतों से वर्षाजल इकट्ठा करनें का भी प्रावधान रखना चाहिए। उन्नत टांकों में संग्रहित जल की निकासी के लिये पारम्परिक रस्सी, बाल्टी के स्थान पर हैण्डपम्प लगाया जा सकता है । इससे न केवल जल की बचत होती है अपितु यह जल निकालने का एक सुरक्षित तरीका भी है । एक उन्नत व बहुउद्देश्यीय टांका बनाने पर लगभग 70 से 80 पैसे प्रतिलीटर खर्चा आता है जिसमे संग्रहित जल का उपयोग घरेलू आवश्यकता के बाद आर्थिक रुप से लाभदायक पेड़, पौधों व पौधशाला इत्यादि में भी किया जा सकता है। ठीक प्रकार से बनाये टांको की यदि नियमित देखभाल की जाये तो ये कई पीढियों की प्यास बुझाने के साथ साथ पर्यावरण संरक्षण व अतिरिक्त आय का स्त्रोत बन सकते हैं।

निर्मित टांका – देखभाल :

- साल में कम से कम एक बार टांके की सम्पूर्ण सफाई । यदि उसमें कोई दरार आदि नजर आये तो सीमेन्ट द्वारा उसका उपचार ।
- वर्षा पूर्व आगोर की सम्पूर्ण सफाई, एक समान ढाल व उसे दबाकर कठोर बनाना । आर्थिक क्षमता के अनुसार आगोर को सीमेन्ट कंकरीट द्वारा पक्का भी बनाया जा सकता है ।
- आवक व जावक स्थान पर लगी जालियों की नियमित सफाई व जंग से बचाव के लिये रंग रोगन आदि।
- पानी में बदबू व जीवाणु आदि से बचाव के लिये वर्ष में एक बार लाल दवा व फिटकरी का प्रयोग ।
- टांके के तले को टूटने/फटने से बचाने के लिये टांके में कुछ पानी हमेशा रखे ।

सम्पर्क सूत्रः **डा. राजेश कुमार गोयल**

मरुभूमि में जल संग्रहण द्वारा अधिक उत्पादन

विश्व के कुल जल उपयोग का दो तिहाई भाग कृषि कार्यो में उपयोग होता है। जरूरत से अधिक जल से न केवल जल हानि होती है बल्कि इससे भूमि की उत्पादकता में भी कमी आती है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने पिछले कई वर्षो की शोध के द्वारा परम्परागत वर्षा जल व मृदा संरक्षण की तकनीकों को और अधिक प्रभावशाली व उन्नत बनाया है। जलग्रहण क्षेत्र आधारित इन संसाधन संरक्षण व प्रबन्धन तकनीकों को अपनाकर विषम परिस्थितियों में भी भरपूर फसल पैदा की जा सकती है।

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी : उबड़–खाबड़ भूमि पर वर्षा जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम होता है। खेत के समतलीकरण द्वारा वर्षाजल वितरण की इस असमानता को दूर किया जा सकता है। समतल सतह से जल का बहाव कम होने के कारण वर्षाजल भूमि में अधिक मात्रा में रिसता है व नमी गहराई तक बनी रहती है। खेत के चारों ओर मेड़ न होने से वर्षा जल अनियन्त्रित रुप से बहकर मृदा का अपरदन कर खेत में अवनालिकायें ;ळनससपमेद्ध विकसित कर भूमि को खराब कर सकता है। अतः खेत को समतल कर चारों ओर

न्यूनतम 50 सेमी से 60 सेमी ऊची मेंड़ बनाकर वर्षाजल, पोषक तत्व, खाद व बीज को बाहर जाने से रोका जा सकता है।

समोच्च बांध/वानस्पतिक अवरोध : अधिक ढ़लान के खेतों में समतलीकरण सभंव नहीं होता है वहां ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे मिट्टी के समोच्च अवरोध बनाकर वर्षाजल के बहाव व मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। समान्यतः दो समोच्च अवरोधों के मध्य 60–70 मीटर की दूरी रखी जाती है जो स्थानीय औसत वर्षा व ढ़लान पर निर्भर करती है। समोच्च अवरोध 0.75 से 1 मीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते है। इन अवरोधों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति जैसे मूंजा, सेवण आदि लगाया जा सकता है।

समोच्च नाली : इस तकनीक के तहत अधिक ढ़लान वाले खेत या चारागाह में ढ़लान के अभिलम्ब दिशा में समोच्च नाली बनायी जाती है। नाली से निकाली गई मिट्टी ढ़लान की तरफ मेड़ के रुप में डाल दी जाती है। वर्षा होने पर सतही बहाव इस नाली में इकठ्ठा हो जाता है जो पौधों को लगाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। ढ़लान की तरफ बनाई गई मेंड़ बहते पानी के मार्ग में अवरोध का कार्य करती है। सामान्यतः नाली 0.75 से 1 मीटर गहरी व 0.60 से 0.75 मीटर चौड़ी बनाई जा सकती है। दो नालियों के मध्य 60 से 90 मीटर का अन्तराल पर्याप्त होता है। समोच्च नाली तकनीक विशेषतः ढ़लान वाले चारागाहों में वृक्ष व घास स्थापित करने में काफी सहायक होती है।

खेत में तालाब की तलछट का प्रयोग : वर्षाकाल के दौरान बहाव के साथ तालाबों में चिकनी काली मिट्टी जमा हो जाती है। इस मिट्टी की जल धारण क्षमता बलुई मिट्टी की अपेक्षा ज्यादा होती है। गर्मियों मे तालाबों के खाली होने के बाद इनकी सतही काली मिट्टी को खेतों में बिछा देने से खेतों की बलुई मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है व पानी अधिक समय तक फसलों के उपयोग के लिये भूमि में उपलब्ध रहेगा ।

अच्छे जमाव, पौधों की बढ़वार तथा अधिकतम उपज के लिये खेत की जुताई एक आवश्यक कृषि कार्य है। खरीफ में आवश्यकता से अधिक जुताई करने पर तेज हवाओं द्वारा मिट्टी एव नमी ह्रास होता है अतः जुताई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि खेत की तैयारी एवं बुआई के बीच कम समय अन्तराल हो । बुआई के लिये अच्छी तरह खेत तैयार करने के लिये स्वीप कल्टीवेटर द्वारा एक जुताई बरसात के समय तथा एक जुताई बुआई से पहले पर्याप्त होती है। जुताई हमेशा खेत के ढाल के अभिलम्ब दिशा में करनी चाहिये। इससे मृदा क्षरण व जल के बहाव में काफी कमी आती हैं।

पंक्तिदार बुवाई : पंक्तिदार बुवाई (Strip cropping) भूमि एवं जल संरक्षण के दृष्किोण से मरुक्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि यदि तिल की चार कतारों के साथ मोंठ की 6 कतारों की एकांतर क्रम में बोयी जायें तो अधिकतम लाभ मिल सकता है। सेवण घास के साथ खरीफ में दलहनी फसलों (मूंग, मोंठ, ग्वार) के पट्टीदार सस्यन से वायु द्वारा मृदा क्षरण को रोकने के साथ–साथ प्रति इकाई क्षेत्र से उपज भी अधिकतम प्राप्त होती है।

सतही पलवार : शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के द्वारा तीव्र वाष्पीकरण होता है जिससे मृदा में व्याप्त नमी का तेजी से ह्रास होता है व पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते है। अतः संचित नमी को बचाये रखने के लिये खेत से निकाले गये खरपतवार व अन्य घास–फूस से सतह पर की गई पलवार मृदा के वातीय व जलीय क्षरण तथा मृदा नमी को बचाने में काफी सहायक होती है। सतही पलवार के रुप में उपलब्धता के आधार पर फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियां, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या पालिथीन की चादरें काम में ली जा सकती हैं।

उचित फसलों का चुनाव व समय पर बुआई : मरुस्थलीय क्षेत्रों में फसलोत्पादन पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करता है अतः इन क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि फसलें ऐसी हो जो कम पानी व कम समय में तैयार हो जाये तथा इनमे सूखा सहन करने की क्षमता हो। मरुस्थल में ऊपरी सतह पर मृदा जल की कमी होने के कारण ऐसे क्षेत्रों में गहरे जड़ों वाली फसलें ज्यादा उपयुक्त रहती हैं । फसलों की बुआई सही समय पर करनी चाहिये । ऐसा न करने से फसलों की बढवार के लिये अनुकूल अवधि कम रह जाती है और फसल के पकने के समय सूखे का सामना करना पड़ सकता है। रेतीली मिट्टियों के लिये बाजरी, मूंग, मोंठ, ग्वार आदि फसलें उपयुक्त रहती है। इन फसलों की किस्म विशेष का चुनाव भूमि व उपलब्ध जल आदि के आधार पर किया जा सकता है।

पौध संख्या एवं रक्षण : शुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण पौधों की संख्या सिचिंत कृषि की तुलना में 10 से 15 प्रतिशत कम रखी जाती है । यदि अधिक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो पौधों की संख्या 20 से 30 प्रतिशत तक कम की जा सकती है। पौध संख्या कम करने से घटी हुई पौध संख्या को ज्यादा पानी उपलब्ध रहेगा। पौध संख्या कम करने से उत्पादन में हुई कमी को कम पौधों को ज्यादा पानी उपलब्ध रहने से उत्पादन में हुई वृद्धि द्वारा पूरा किया जा सकता है। बुआई से पूर्व बीजोपचार किया जाना आवश्यक है। 2–3 वर्ष के अन्तराल पर जैविक खाद का प्रयोग भी फसल उत्पादन में काफी सहायक होता है।

समय पर खरपतवार निकालना : खरपतवार खेत में उपलब्ध जल व पोषक तत्वों को शीघ्रता से ग्रहण करते है फलस्वरुप फसलों को आवश्यक पौषक तत्व व पानी पर्याप्त मात्रा में नही मिल पाते है। अतः फसलों को पर्याप्त नमी व पौषक तत्व उपलब्ध कराने हेतु समय पर खेत को खरपतवारों से मुक्त कर देना चाहिए। खरपतवार को उपयुक्त फसल चक्र अपनाते हुए खुरपी, कल्टीवेटर या खरपतवार नाशक दवाइयों का प्रयोग करके नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार मरु क्षेत्रा में विभिन्न प्रकार के सस्यन से अधिकतम उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जल संरक्षण की ऊपर दी गई विधियों के सफल प्रयोग से खरीफ की फसलों की अच्छी उपज के साथ–साथ रबी की फसलों की बुआई के लिए भी नमी मृदा में संरक्षित रहती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. राजेश कुमार गोयल**

समन्वित कृषि

यह परियोजना केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) जोधपुर में वर्ष 1991–92 से चल रही हैं इस परियोजना के मूल उद्देश्य थ्ार अंचल की वर्षा आधारित कृषि भूमि में टिकाऊ खेती के लिये विभिन्न प्रारूपों पर अनुसंधान कार्य करना तथा कृषि पद्धतियों के उचित समन्वयन से विकसित फार्म माडल्स की ओर किसानों की उन्मुख करता है।

पश्चिम राजस्थान के सूखे प्रभावित क्षेत्रों में कृषि व्यवसाय एक चुनौती है। अकाल की भारी संभावना (35–70 प्रतिशत) वर्षा के आगमन के समय, मात्रा आदि में भारी अनिश्चितता इस क्षेत्र की नियति है। यहां के किसानों के सामाजिक व आर्थिक ढ़ाचे में भी विविधता है तथा किसान या तो गांव में स्थाई निवास बना कर वर्षा काल में खरीफ की फसलें ले कर खेत को साल के शेष भाग में आरक्षित छोड़ देते है या फिर अन्य कास्तकार ढ़ाणी बना कर पूरे वर्ष अपने खेत की देख–भाल व रखवाली करते हैं। अतः फार्म माडल्स भी परिस्थितिजन्य विविधताओं के अनुरूप ही टिकाऊ खेती के लिये उपयुक्त हो सकते हैं। काजरी में निम्न लिखित फार्म मोडल्स को विकसित किया गया है :

1. फसल विविधिकरण : यह माडल वर्षाकाल में कृषि करने वाले किसानों के लिये उपयोगी हो सकती हैं इसमें फसल विविधीकरण के लिये कुल खेत का 30 प्रतिशत भाग बाजरे में, 40 प्रतिशत भाग दलहनों में, 20 प्रतिशत भाग ग्वार में तथा बचे हुये 10 प्रतिशत भाग में तिलहन फसलों की

खेती पर जोर दिया जाता हैं। मानसून वर्षा के 15–20 जुलाई तक ही यह मॉडल कार्य कर सकता हैं। अधिक विलम्ब पर फसल विविधीकरण में दालें, चारोपयोगी फसलें (चंवला, बाजरा) व तिलहन फसलों की ही सम्भावना अधिक रहती हैं। ऐसे किसानों को फसल विविधीकरण के साथ–साथ फसल चक्र, मिलवां खेती, उन्नत किस्मों का बीज (जल्दी व मध्य काल में पकते वाली), उन्नत सस्य क्रियाओं को भी महत्व देना चाहिये। ऐसे क्षेत्रों में वर्षा जल एवं भू प्रबन्धन को विशेष महत्व देना चाहिये। उपरोक्त माडल से किसान अपने 40–50 बीघा खेत पर 2–3 गाय व 8–10 भेड़ व बकरी को वर्ष भर पोषण कर सकते हैं तथा औसतन रू. 70,000 से 80,000 प्रति वर्ष आय अर्जित कर सकते हैं।

2. समन्वित कृषि माडल : जो किसान ढ़ाणी बना कर अपने खेत पर ही रह रहे है उनके लिये कृषि विविधिकरण अपनाकर अधिक उत्पादकता, आय एवं सतत् कृषि विकास की प्रबल संभावनाये हैं। इन कृषि मोडल्स के पूर्ण विकास में 5–7 वर्ष का समय अवश्य लग जाता है किन्तु उसके बाद किसान की आय, भूमि व जल उत्पादक क्षमता में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इन माडल्स को अपनाकर हमारे मरू प्रदेश का किसान टिकाऊ खेती अपनाकर अपने व अपने परिवार के समग्र विकास के पथ पर अग्रसर हो सकते है। काजरी द्वारा विकसित समन्वित कृषि माडल इस प्रकार है

कृषि पद्धति	**क्षेत्रफल (हे.)**	**कृषि पद्धति**	**क्षेत्रफल (हे.)**
फसल पद्धति	1.00	बेर आधारित चरागाह	1.75
खेजड़ी आधारित कृषि वानिकी	0.75	अंजन आधारित कृषि वानिकी	0.75
बेर आधारित कृषि उद्यानिकी	0.75	इजरायली बबूल आधारित कृषि वानिकी	0.75
मोपेन आधारित चरागाह	0.75	धामण घास आधारित कृषि	0.75
		कुल क्षेत्रफल	**7.00हे.**

इस माडल को अपनी परिस्थितियों के अनुसार फेर बदल कर किसान 5–7 गायों, 15–20 भेड़ व बकरियों का वर्ष भर पालन पोषण कर सकता है तथा विभिन्न कृषि उत्पादों जैसे चारां, लूंग व ,पाला, पशु आहार (ग्वार), अनाज, दालें, तिलहन, जलाऊ लकड़ी, गोबर व मींगणी की खाद, बेर आदि का भी उत्पादन कर सकता है। इस प्रकार वह अपने व अपने परिवार के लिये वर्ष भर का रोजगार प्राप्त कर 2 से 2.5 लाख रूपये की आमदनी प्राप्त कर सकता है। यह खेती अकाल व सूखे की स्थिति से भी कम प्रभावित होती है तथा प्राकृतिक संसाधनों की क्षमता में वृद्धि कर मारवाड़ के असिंचित क्षेत्रों में टिकाऊ खेती का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. टी. के. भाटी**

एकीकृत भू–उपयोग पद्धति एवं कृषि तंत्र अनुभाग

मरू क्षेत्र में एक ओर अपने विशेष प्राकृतिक संसाधन है, तो दूसरी ओर भयावह समस्यायें भी हैं इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों (जन, मृदा, वनस्पति, पशु, इत्यादि) के समुचित प्रबन्धन हेतु शोध व प्रद्योगिकी विकास, इस अनुभाग का प्रमुख कार्य क्षेत्र है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) में जो भी उन्नत भू–उपयोग पद्धतियों की प्रद्योगिकी विकसित की जा रही है, उसे मरू क्षेत्र के परिस्थिति तंत्र में कैसे समावेशित किया जाय, इस दिशा में अनुभाग कार्यरत है। अनुभाग जिन क्षेत्रों में मौलिक अनुसधानों को अग्रसरित कर रहा है, वह निम्न हैः

- जलग्रहण क्षेत्र विकास एवं प्रबन्धन द्वारा जल का सतत् कृषि उत्पादन हेतु समुचित उपयोग
- एकीकृत कृषि तंत्र द्वारा विविधतापूर्ण कृषि विकास
- शुष्क क्षेत्र वानिकी एवं कृषि वानिकी द्वारा सिंचित संसाधनों से अधिक लाभ व पर्यावरण सुरक्षा
- शुष्क क्षेत्र बागवानी द्वारा जिविका उपार्जन हेतु अधिकतम् अवसरों की उपलब्धता।

- कृषि, फल एवं वनोत्पाद प्रसंस्करण एवं परिरक्षण द्वारा वैकल्पिक आय उपार्जन व पोषण सुरक्षा
- मृदा संसाधन प्रबन्धन द्वारा मृदा संरक्षण
- कृंतक (चूहा) नियंत्रण द्वारा फसल हानि को कम करना।

सम्पर्क सूत्रः **डा. जे. सी. तिवारी**

वानिकी तथा कृषिवानिकी का मरू क्षेत्र में महत्व

शुष्क क्षेत्र में वृक्ष तथा झाड़ियों की बहुत सी प्रजातियां पाई जाती है परन्तु उनका घनत्व विभिन्न स्थानों में 10–40 प्रति हेक्टेयर से अधिक नहीं है। इन वृक्षों व झाड़ियों का घनत्व वर्षा तथा मृदा के ऊपर निर्भर करता है। कम घनत्व के साथ–साथ वृक्ष व झाड़ियों की वृद्धि पद भी बहुत धीमी है। अतः काजरी ने सन् 1960 से ही देश व विदेश में बहुत सी वृक्ष व झाड़ियों की प्रजातियों का परीक्षण किया, तथा उनमें से कुछ प्रजातियाँ बहुत ही उपयोगी तथा तीव्र वृद्धि वाली पाई गई तथा यहाँ के वातावरण में सामजस्य बिठाने की प्रचुर क्षमता भी इन प्रजातियों में पाई गई। इन प्रजातियों में प्रमुख हैः *अकेशिया टोरटोलिस (इजरायली बबूल) कोलोफोसपरमम् मोपोन(मोपेन), हार्डविकीयां बाईनेटा (अन्जन), डाईक्रोस्टेकिस न्युटानस (न्यूटान), अकेशिया न्यूबिका (न्युबिका)* तथा आस्ट्रलियन अकेसिया इत्यादि। वन विभाग ने करीब 5 लाख हैक्टयेर क्षेत्रफल में इजरायली बबूल लगा कर टीबा स्थरीकरण का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसके अलावा इस पौधे के बहुत अन्य उपयोग है जैसे, इसकी लकड़ी को सिजनिंग व उपचारित कर हैन्डीक्राफ्ट उद्योग में काम आना, काजरी द्वारा विकसित गोंद उत्पादन विधि से अधिक गोंद प्राप्त करना जिसकी गुणवत्ता कुमट के गोंद के बराबर है इत्यादि।

इसी प्रकार कुम्मट से यहाँ नही के बराबर गोंद प्राप्त होता था तथा काजरी द्वारा विकसित विधि से 500 ग्राम तक गोंद प्रति वृक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जिसका बाजार मूल्य 300–400 रूपये प्रति किला ग्राम है। काजरी ने अभी तक 4,25000 रूपये का गोंद प्राप्त करने वाला रसायन किसानों को वितरित किया है।

विलायती बबूल जो कि 1917 में राजस्थान में मेक्सिकों से लाया गया था, अब वह खरपतवार की तरह पूर्ण प्रदेश में फैल गया है। यह ग्रामीण परिवेश में करीब 70 प्रतिशत तक जलाऊ लकड़ी की आपूर्ती करता है, परन्तु इसके बहुत हानिकारक प्रभाव भी है। हानिकारक प्रभाव को देखते हुए काजरी ने पिछले कुछ वर्षों में इसकों अधिक कैसे उपयोगी बनाया जाय, इस पर शोध किया तथा इसमें निम्न उपयोगिता पाई जैसे हैन्डीक्राफ्ट उद्योग उपयोगिता तथा इसकी लकड़ी से टाईल्स, फोटोफ्रेम, कोयला, बिजली उपत्पादन इत्यादि। इसकी फलियाँ में शर्करा की मात्रा अधिक होने से इनको खाद्य पदार्थ की तरह भी उपयोग में लिया जा सकता है जैसे इससे बिस्किट प्रसो–प्रोटिनेक्स, कॉफी इत्यादि बनाई जा सकती है। इसकी फलियों का पशु आहार में भी काम में लिया जा सकता है। पशुआहार में 20 प्रतिशत मिलाकर खिलाने से दूध उत्पादन बढ़ता है। काजरी ने बिना काटों वाला विलयती बबूल भी विकसित किया है तथा बिना कांटे वाले बबूल को काटें वाले बबूल पर प्रत्यारोपण कर कांटे वाले बबूल को बिना काटों वाला बनाया जा सकता है। बिना कांटें वाला बबूल सीधा बढ़ता है तथा इसके नीचे घास तथा अन्य फसल भी उगाई जा सकती है।

जाल का पौधा भी पश्चिमी राजथान में बहुतायत मात्रा में पाया जाता है। इससे जो फल प्राप्त होते हैं उनकों पीलू कहते हैं तथा यह फल खाने में स्वादिष्ट होता है। एक पेड़ से औसतन 30 किलोग्राम फल प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु 4–5 किलोग्राम तक ही फलों को खाने में उपयोग होता हैं पिछले कुछ वर्षों में पीलू से उसका रस, जैम तथा वाइन इत्यादि बनाने के प्रयोग

किये गये हैं तथा उनमें बहुत सफलता मिली है। अगर पूर्ण रूप से पीलू का उपयोग कर लिया जाय ता पीलू वाले क्षत्रों में कृषकों की आमदनी बढ़ाई जा सकती है।

कृषि वानिकी पर भी अनेक प्रयोग किये गये हैं तथा यह देखा गया है कि प्रारम्भ के करीब 4–7 वर्षों तक फसलों पर किसी प्रकार का हानिकारक असर नहीं पड़ता, परन्तु उसके बाद पेड़ों का हानिकारक प्रभाव फसलों पर देखा गया है तथा कुछ वृक्षों में दस वर्ष पश्चात उनके नीचे बिल्कुल ही फसल नहीं होती है जेसे, इजरायली बबूल, अजंन, मोपेन, नीम इत्यादि, जबकी खेजड़ी व रोहिड़ा में किसी प्रकार का हानिकारक प्रभाव नहीं होता हैं कुम्मट का नकारात्मक आंशिक असर ही फसलों पर देखा गया है।

वृक्षों का फसलों पर कुछ प्रतिकूल प्रभाव जरूर होता है, परन्तु आर्थिक विश्लेषण करके देशा जाय तो कृषि–विनिक व कृषि–उद्यानिकी अधिक फयदेबन्द होता है। अतः किसानों को खेत अथवा मेढ़ पर कम से कम 30 से 50 वृक्ष जरूर लगाने चाहिये। एक अनुमान से यह देखा गया हे कि अगर 30 पोधे खेजड़ी के प्रति हैक्टयर रखे जाये तो वह 50–60 वर्षों में एक लाख रूपये से ज्यादा की आमदनी देते हैं।

सम्पर्क सूत्रः **डा. एल. एन. हर्ष**

बाजरा की उन्नत किस्म

सी.जेड.पी. 9802 : सी.जेड.पी. 9802 बाजरा की नई किस्म को अधिक अनाज एवं चारा उत्पादन के कारण शुष्क क्षेत्रों के लिए विशेष रुप से जारी किया है यह किस्म शुष्क क्षेत्रों के लिए पहले से अनुमोदित किस्मों (पूसा 266 व आई.सी.टी.पी. 8203) से 14 से 23 प्रतिशत अधिक उत्पादन देती है, लगभग 70 दिन में पकती है। इस किस्म के बीज को संकर बाजरा की तरह हर साल नया खरीदने की आवश्यकता नहीं है। किसान इसकी फसल में से ही अगली 2–3 बुवाई के लिए बीज रख सकते हैं।

किस्म सी.जेड.पी. 9802 के गुण

1. देशी बाजरा से जल्दी पकती है।
2. अधिक चारे व दाने की उपज देती है।
3. रोग रोधी है।
4. शुष्क क्षेत्रों के लिए विशेष रुप से उपयोगी है।
5. उपजाऊ जमीन व खाद के साथ अधिक उपज देती है।
6. किसान इसका बीज खेत में से ही अगली 2–3 बुवाई के लिए रख सकते हैं

उगाने के तरीके

खेत की तैयारी : खेत की तैयारी वैसी ही करें जैसे बाजरे की अन्य किस्मों के लिए करते हैं।

बोने का समय : वर्षा होते ही जुलाई माह में देसी बाजरा की तरह बोते हैं।

बुवाई का तरीका : बुवाई कतारों में करें और कतारों में कम से कम 50 सेंटीमीटर का फासला रखें।

संकुलन बाजरा की शुद्धता कैसे कायम रखें : यदि आपके बाजरा के खेत के 400 मीटर परिसीमा में दूसरा कोई बाजरा का खेत नहीं है तो आप अपने पूरे खेत का बाजरा बीज के लिये उपयोग कर सकते हैं। लेकिन यदि आपके बाजरा के खेत की 400 मीटर परिसीमा के अन्दर और कोई बाजरा का खेत है तो आप अपने खेत की 10 से 20 मीटर की बाहरी सीमा को छोड़कर मध्य भाग का बाजरा बीज के लिये उपयोग कर सकते हैं।

बाजरा की अन्य उन्नत किस्में :

शंकर किस्में

1. एच.एच.बी. 67–2
2. एच.एच.बी. 94
3. आई.सी.एम.एच. 356
4. आर.एच.बी. 121
5. आर.एच.बी. 12

सकुंल किस्में

1. राज 171
2. पूसा 383

सम्पर्क सूत्रः **डा. ओ. पी. यादव**

मरू दलहनों की उन्नत किस्में

ग्वार

प्रजाति	**मरू ग्वार**
उत्पादकता	7–8 क्विटंल प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि (दिनों में)	97–100
विशेषताएँ	सूखा सहन क्षमता, बेक्टीरियल ब्लाइट प्रतिरोधी, देरी से बुवाई के लिये भी उपयुक्त।
किस्म	**आर.जी.सी. 1002**
पकने की अवधि	80–85 दिन
उत्पादन क्षमता	7–8 क्विंटल प्रति है
विशषेताएँ	इसका पौधा अधिक शाखदार व पत्तियों के किनारे दांतेदार होते हैं। पौधे की ऊँचाई 60–90 से.मी. व 33–36 दिन में हल्के मुकाबी फूल आते है।
किस्म	**आर.जी.सी. 936**
पकने की अवधि	80–85 दिन
उत्पादन क्षमता	7–9 क्विंटल प्रति हैक्टेयर
विशेषताएँ	एक शीघ्र पकने वाली किस्म है व सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है।
किस्म	**आर.जी.सी. 1003**
पकने की अवधि	85–92 दिन
उत्पादन	7–9 क्विंटल प्रति हैक्टेयर
विशेषताएँ	इसका पौधा ऊँचाई, शाखादार पत्तियों के किनारे चिकने होते हैं।
किस्म	**आर. जी. एम. 112**
पकने की अवधि	80–85 दिन
उत्पादन	7–8 क्विंटल
विशेषताएँ	यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है इसके पौधे बुवाई के 32–35 दिन में फूल आने लगते हैं।

मोंठ

किस्म	**मरू मोंठ**
उत्पादकता	500–550 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	80–85 दिन

विशेषताएँ	मध्यम फैलाव, पीली चितेरी विषाणु रोग सहने में सक्षम, सूखा सहने की क्षमता, अंतराशस्य के लिए उपयुक्त।
किस्म	**काजरी मोंठ 1**
उत्पादकता	400–500 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	70–75 दिन
विशेषताएँ	मध्यम फैलाव, संरक्षित जल वाली भूमियों के लिए उपयुक्त, दाने व चारे दोनों के लिए उपयुक्त, अच्छे प्रबन्धन पर अधिक उपज, प्रोटिन 25 प्रतिशत।
किस्म	**काजरी मोंठ 2**
उत्पादकता	700–800 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	65–67 दिन
विशेषताएँ	कम व अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, मध्यम फैलाव वाली, सूखा सहन करने की क्षमता, मध्यम भूमि उर्वरता व मध्यम प्रबंधन में भी अधिक उपज देती है।
किस्म	**काजरी मोंठ 3**
उत्पादकता	800–900 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	60–62दिन
विशेषताएँ	सूखा एवं येलो मोजेक वायरस से बचने की क्षमता, कम फैलाव।
किस्म	**आर. एम. ओ. 435**
पकने की विधि	65 – 67 दिन
उत्पादन	6–6.5 क्विंटल पति हैक्टेयर
विशेषताएँ	यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म व पौधा 30–35 से.मी. लम्बा होता है। प्रति पौधां 6–8 प्रारम्भिक तथा 1–2 द्वितीय शाखाएँ होती है बीजो का वजन 32 गुणा प्रति 1000 होता है।
किस्म	**आर.एम.ओ. – 40**
पकने की अवधि	62–65 दिन
उत्पादन	6–7 क्विंटल प्रति हैक्टेयर
विशेषताएँ	सम्पूर्ण फसल एक साथ पकती है। इसमें सूखा सहने की क्षमता होती है एवं पीत शिरा मोजेक विषाणु रोधक किस्म है।
किस्म	**आर.एम.ओ. 257**
पकने की अवधि	62–67 दिन
उत्पादन	50–55 क्विंटल प्रति हैक्टेयर
विशेषताएँ	पीत शिरा मोजेक विषाणु रोधक एवं सूखा सहन करने वाली किस्म है राजस्थान के शुष्क क्षेत्र के लिये उपयुक्त प्रति पौधा 3–6 प्रारम्भिक एवं 1–2 द्वितीयक शाखाएँ होती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. डी. कुमार एवं डा. ए. हेनरी**

मूंग

किस्म	**आर. एम. जी. 62**
पकने की अवधि	60–70 दिनों में
उत्पादन	7–8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर

विशेषताएँ	यह किस्म खरीफ व जायद के लिये उपयुक्त/इसकी फलियां एक साथ पकती है। इस किस्म के पौधे बीज हल्का हरा चमकदार होता है। पौधे मध्यम ऊँचे, यह राइजोक्टोनिया ब्लाइट व फली छेदक से प्रतिरोधी किस्म है।
किस्म	**के – 851**
पकने की अवधि	60–65 (जायद), 70–75 (खरीफ)
उत्पादन	6–8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर
विशेषताए	इसका दाना मोटा व चमकदार होता है। पौधे मध्यम ऊँचाई एवं अर्द्ध विस्तारी व गहरे हरे रंग की पत्तियां होती है। जायद व खरीफ दोनों के लिये उपयुक्त।

कुल्थी

प्रजाति	**मरू कुल्थी – 1**
उत्पादकता	4–6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि (दिनों में)	90–115
विशेषताएँ	यह एक मध्यम देरी से पकने वाली किस्म है व इसमें सूखा सहन क्षमता है। इसमें रोगों व कीड़ों का भी प्रकोप कम होता है व देरी से बुवाई के लिये भी उपयुक्त है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. ए. हेनरी**

फल व तकनीकी उद्यान

उद्यानिकी खण्ड में शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त विभिन्न फल वृक्षों पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। यहां पर मुख्य रूप से बेर, आंवला, खजूर, बेल पत्र, गून्दा, करोन्दा, फालसा, अनार, केर, गून्दी इत्यादि की विभिन्न किस्मों के पेड़ पौधे लगे हए हैं। वर्तमान में यहां पर करोन्दा, गून्दा व बेल पत्र के जीव दृव्य में सुधार करके उन्नत किस्में विकसित करने पर जोर किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वृहत बीज परीयोजना के अन्तर्गत विभिन्न फलदार पेड़ पौधों की रोपण सामग्री के उत्पादन करने के लिए पौधशाला बनी हुई है जो कि उन्नत किस्म के फलदार पौधे किसानों को लागत मूल्य पर उपलब्ध कराती है। यहां पर एक बहुत बड़े क्षेत्रफल में बेर का एक फार्म जिसमें यह दर्शाया गया है कि कैसे केवल वर्षा पर निर्भर रहते हुए भी बेर से अच्छी खासी आमदनी ली जा सकती है। इस उद्यान के 40 वर्ष पुराने पेड़ के उत्पादकता बनी हुई है।'

तकनीकी उद्यान में संस्थान द्वारा विकसित मुख्य प्रौद्योगिकी का जीवित प्रदर्शन किया गया है इसके एक भाग में वर्षा जल संग्रहण के लिए 3 लाख लीटर क्षमता के टांकें का निर्माण किया गया है। इस टांके में संग्रहित जल का सौर उर्जा द्वारा लिफ्ट करके बून्द–बून्द सिंचाई पद्धति से फलदार पौधों में सिंचाई की जा रही है। फलदार पौधों में बेर, आंवला व अनार की चार–चार उन्नत किस्मों का प्रदर्शन किया गया है। तकनीकी उद्यान के एक तिहाई भाग में शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त विभिन्न तरह के औषधीय पौधों का जीवंत प्रदर्शन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें बेर के साथ दलहनी फसलों जैसे मूंग व ग्वार का प्रदर्शन भी किया गया है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. पी. आर. मेघवाल**

क्षारीय मृदाओं का प्रबन्धन

तैलिया या खारे पानी से लगातार सिंचाई करने पर मिट्टी क्षारीय हो जाती है व सुखने पर अत्यधिक कठोर हो जाती है तथा सिंचाई या बरसात का पानी सतह पर ही इक्ट्ठा हो जाता है। इस तरह की मृदाओं में बुआई करने पर बीजों का अंकुरण पूरी तरह से नहीं हो पाता है। इस तरह

की मृदाओं के सुधार हेतु जिप्सम की आवश्यक राख (5–8 टन प्रति हैक्टेयर) को फसल लगाने से 10–15 दिन पहले केवल 10 से.मी. उपरी सतह में मिलाकर पानी भर देना चाहिए। जब पानी भूमि में रिम जाये उसके बाद फसलोत्पादन की सारी प्रक्रिया शुरू करें। जिप्सम की कुल आवश्यकता का 20–50 प्रतिशत जिप्सम डालकर गेंहूँ व रायड़ा से अच्छी आमदनी प्राप्त हो सकती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. प्रमिला रैना एवं डा. महेश कुमार**

मृदा पपड़ी प्रबन्धन

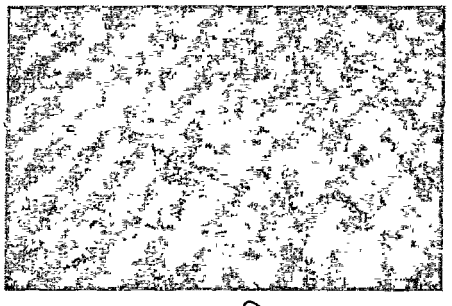

अनुपाचारित

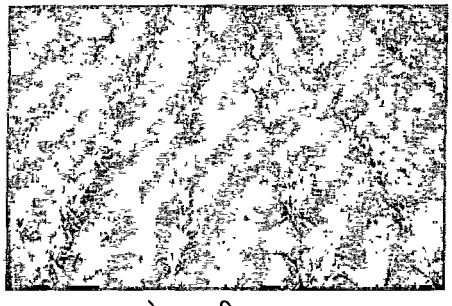

गोबर की खाद

बुवाई के पश्चात् एवं उगने से पहले वर्षा होने पर जब तेज धूप निकलती है तो शुष्क क्षेत्र की मिट्टी में सिल्ट की उपस्थिति के कारण कुछ फसले जैसे बाजरा, तिल इत्यादि के अंकुरण प्रतिशत कम होने के कारण प्रति ईकाई पौधों की संख्या बहुत कम रह जाती है जिसके कारण फसल उत्पादन बहुत प्रभावित होता है। इस समस्या के निवारण हेतु बुवाई के पश्चात् कुँडों में गोबर की खाद 5 से 10 टन प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करने पर पौधों की संख्या एवं उत्पादन में 70 प्रतिशत तक बढोत्तरी पायी गयी है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. एन.एल. जोशी**

बूँद–बूँद सिंचाई विधि द्वारा प्रभावी जल प्रबन्ध

शुष्क क्षेत्र में भूमिगत जल का स्तर बहुत गहरा है तथा पानी की उपलब्धता भी बहुत कम है। ऐसी स्थिति में फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई की उन्नत विधियों का प्रयोग करना चाहिये जिससे कि कम से कम पानी में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकें। बूँद–बूँद सिंचाई के प्रयोग से सतही विधि द्वारा सिंचाई करने की अपेक्षा 40–50 : तक पानी की बचत की जा सकती है तथा 50 से 70: अधिक फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति को एक हैक्टेयर में लगाने में लगभग 50,000 रूपये का खर्च आता है तथा यह राशि 2–3 वर्ष में अधिक लाभ द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. अनुराग सक्सेना**

औद्योगिक उत्प्रवाहों का वृक्ष लगाने के लिए उपयोग

यूकेलिप्टस, अकेशिया नाइलोटिक, नीम, खेजड़ी, मोपेन व अकेशिया टोरटिलिस के वृक्ष इस पानी के उपयोग से लगाये जा सकते है। इसके लिए डबल रिंग विधि का प्रयोग लिया जाता है। पौधों को अंदर की रिंग में लगाया जाता है तथा मौसम के अनुसार 15–30 लीटर औद्योगिक उत्प्रवाहों का बाहरी रिंग में डालकर सिंचाई करते है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. प्रवीण कुमार**

बेर व अनार के पौधों को ए.एम. फंजाई से उपचारित करना

ए.एम. फंजाई एक ऐसा सूक्ष्म जीव है जो पौधों की जड़ों में रहता है और पौधो को पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस व सल्फर के अवशोषण में मदद करता है। नर्सरी में बेर के पौधो को इससे उपचारित कर देने पर पौधे करीब 15 दिन पहले रोपाई के लिए तैयार हो जाते है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. प्रवीण कुमार**

यूरिया की उत्पादक शक्ति का संर्वधन

यूरिया के खेत में डालने के बाद नत्रजन का केवल सीमित भाग पौधों के प्रयोग में आ पाता है। इसका एक बड़ा भाग अमोनिया गैस में बदल कर भूमि से बाहर निकल जाता है। मृदा से नत्रजन की इस क्षति को कम करने के लिए इसमें बारीक पिसी हुई गंधक का अनुपात बाजरे के लिए 8:1 व तिलहन के लिए 4:1 रखना उपयुक्त रहता है। इस विधि द्वारा आमोनिया की क्षति को करीब 50 : तक कम किया जा सकता है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. प्रवीण कुमार**

थायोयूरिया से ग्वार में सूखे के दुष्प्रभाव में कमी

अनुपचारित थायोयूरिया

ग्वार हमारे यहाँ की प्रमुख फसल है व पानी की कमी इसकी कम उपज का एक मुख्य कारण है। यदि बोने से पहल ग्वार के बीजों को थायोयूरिया से उपचारित किया जाय या खड़ी फसल में इसका छिड़काव किया जाय तो इसकी उपज में आने वाली कमी को कुछ दूर किया जा सकता है। बीज उपचार के लिए 5 ग्राम थायोयूरिया को 10 लीटर पानी में घोल कर बीज को 4 घंटे भिगोने के बाद 1 घंटे छाया में सुखायें। फसल पर छिड़काव करने के लिए 1. का घोल बनायें। इसके उपयोग से 15.20 : तक उपज बढ़ जाती है जिससे किसान 1500–2000 रू/हे. प्राप्त कर सकता है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. बी. के. गर्ग**

सोनामुखी के तने के अर्क का बाजरे का उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयोग

अनुपचारित

सोनामुखी तने का अर्क

करीब 200 कि.ग्रा. सोनामुखी के तनों को 150 लि. पानी में 3–4 दिन के लिए भिगो दें। 3 दिन के पश्चात् तनों को निकाल कर इस अर्क का बाजरे पर छिड़काव कर दें। करीब 100 कि.ग्रा. सोनामुखी तने से अर्क बन जाता है जो एक है. में छिड़काव के लिए काफी होता है। इससे बाजरे की उपज करीब 20: तक बढ़ जाती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. बी.के. गर्ग**

फसलवार कीटों के लक्षण तथा नियन्त्रण

बाजरा

राइनीसिया भृंग : सफेद लट समूह के इस कीड़े के वयस्क भृंग बाजरा के सिट्टे से बढ़ते हुए दानों में से उनका दूध चूस लेते हैं जिसके कारण सिट्टों में दानें नहीं भरते और उपज में भारी कमी होती है। 2 प्रतिश्वत मिथाइल पैराथियान या 1.5 प्रतिशत क्यूनलफॉस चूर्ण का भुरकाव करें।

मूंग

भृंग (सर्टोजेमिया) : काले रंग के ये कीड़े लम्बे मुंह वाले होते हैं जिनके प्रतिशत का पिछला हिस्सा बहुत फूला हुआ होता है। ये दलहनी फसलों में पत्तियों के बीच में छेद कर देते हैं जिसके कारण पौधों की सामान्य बढ़त रूक जाती है। इसी भृंग के समान पत्तियों को नुकसान पहुंचाने वाला एक दूसरा कीड़ा है। गैलुरसिड भृंग जो हल्के मटियाले रंग का होता है। इसकी गिडारें जड़ों को नुकसान पहुंचाती हैं भृंग दिन में ढ़ेलों के बीच छूपे रहते हैं तथा अन्धेरों या छाया होने पर पत्तियां खाते हैं।

तैला (जैसिड) या फुदका : यह बहुत छोटे आकार का किन्तु चुस्त हरे रंग का कीड़ा होता है। इसके वयस्क तथा छोटी अवस्था के कीट (निम्फ) दोनों पत्तियों से रस चूसते हैं, जिसके कारण पौधे कमजोर हो जाते हैं तथा उनकी बढ़त रूक जाती है। अधिक उग्र प्रकोप होने पर पौधें सूख जाते है। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ सिकुड़ कर प्यालेनुमा मुड. जाती है। कई बार ये कीड़े चाशनी

जैसा पदार्थ छोड़ते हैं। मिथाइल पैराथियान, फैनिट्रोथियॉन (0.05 प्रतिशत) या कार्बरिल (0.1 प्रतिशत) अगेती बुवाई करने से तैला अपेक्षाकृत कम नुकसान पहुंचाता है।

माहू या मोयला : ये छोटे आकार के मुलायम हरे या काले रंग के बिना पंख या पंखों वाले कीड़े पौधों के नाजुक हिस्सों के रस चूसते हैं। इनकी संख्या बहुत तेजी से बढ़ती है। जिसके कारण पौधें कमजोर होकर सूखने लगते हैं। यदि फली लगाने के समय इनका प्रकोप हो तो और भी खतरनाक होता है। क्योंकि तब फली सिकुड़ जाती है। उसमें दाना नहीं भरता या छोटा रह जाता है, जिससे उपज पर बुरा प्रभावा पड़ता है। इसके अलावा से कीड़े एक तरह का चिपचिपा पदार्थ पौधों पर छोड़ते हैं ऐसे पौधों की बढ़त रूक जाती है। बादल भरे मौसम में इनका तेजी से विस्तार होता है। फसल पर प्रति हैक्टेयर आधा से एक लीटर एण्डोसल्फान या आधा लीटर मोनोक्रोटोफॉस अथवा डाइमेथोएट का छिड़काव करने से इन कीड़ों का नियन्त्रण संभव है।

सफेद मक्खी : यह बहुत छोट आकार के जीव होते हैं। वयस्क सफेद रंग के चुस्त कीड़े होते हैं। जो अधिकतर पत्तियों की निचली सतह पर रहते हैं। इनके निम्फ गोल काले धब्बों जैसे दिखाई देते हैं। जिनके चारों ओर सफेद किनारी होती है। निम्फ एक जगह स्थिर रहते हैं। वयस्क तथा निम्फ दोनों ही पौधों का रस चुसकर उन्हें कमजोर बनाते हैं। किन्तु इससे कई गुना ज्यादा नुकसान ये पीत शिरा विषाणु रोग फैलाकर पंहुचाते मोंठ में यह रोग बहुत अधिक लगता है।

सफेद मक्खी के नियन्त्रण के लिए एहतियाती उपाय करने चाहिए। इनका प्रसार रोकने के लिए सबसे पहले कीड़ा दिखते ही फसल पर मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत या मिथाइल पैराथियान या एण्डोसल्फोन (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करें। इस बात का विशेष ध्यान रखें कि छिड़काव पत्तियों दोनों ओर हों। खेत में से विषाणु रोगी पौधों को उखाड. कर तुरन्त नष्ट कर दें। ताकि सफेद मक्खियां इस रोग को ज्यादा नहीं फैला पाएं। कुछ किस्में जिनमें सफेद मक्खी व विषाणु रोग कम लगते हैं वे हैं। इसलिये इस कीड़े का नियन्त्रण ही एकमात्र विकल्प है।

तना मक्खी : यह साधारण मक्खी जैसी ही होती है। किन्तु आकार में बहुत छोटी होती है मादा मकखी पत्तियों के अन्दर अण्डे देती है जिसमें से निकली लटें डंठल के अन्दर होते हुए तने में प्रवेश कर जाती है। तने में किए गये नुकसान के कारण पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए फसल पर मोनोक्रोटोफास (0.04 प्रतिशत) या डायमेथोएट (0.03 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

फली छेदक : फली छेदक चने का सबसे बड़ा शत्रु है। इन विविधभक्षी कीड़ों की कई किस्में हैं। खरीफ की दलहनी फसलों पर लगने वाले फली छेदक के वयस्क भूरे तथा पीले रंग के मिश्रित रंग के शलभ होते हैं सुण्डियां हरे रंग की होती है जिन पर सलेटी रेखाएं बनी होती है। शुरू में ये पत्तिया खाती है तथा फली लगने पर उसमें घुसकर दाना खाती है। चने के फली छेदक के वयस्क कुछ मोटे हल्के रंग के तथा सुण्डियां पीले रंग की होती हैं सुण्डियां चने की फलियों में छेदकर उनमें पनप रहे दानों को अपना भोजन बनाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.05 प्रतिशत एण्डोसल्फॉन या 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करें।

काटने वाली सुण्डियां (कट वर्म) : बारानी क्षेत्रों में चने की सबसे ज्यादा फसल इसी कीड़ें द्वारा खराब की जाती है। वैसे तो यह कीड़ा विविधभक्षी है, किन्तु चने पर इसका नुकसान बहुत ज्यादा होता है। सुण्डियां दिन के समय ढ़ेलों के बीच में या जमीन में छुपी रहती है लेकिन रात में छोटे पौधों की पत्तियां खाती है।

तना मक्खी के नियन्त्रण के लिए फसल का लगातार मुआयना जरूरी है। प्रभावित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। एण्डोसल्फान (0.07 प्रतिश) मोनोक्रोटोफॉस (0.04 प्रतिशत) या डायमथोएट (0.03 प्रतिशत) का छिड़काव बचाव के तौर पर किया जा सकता है।

फसल पर फलियां बनने के समय 10 प्रतिशत कार्बरिल चूर्ण का भुरकाव अथवा 0.05 प्रतिशत एण्डोसल्फान या 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस का छिड़काव करना चाहिए।

पुरानी फसल को तो तने पर से काट ही देती है। अकेलो सुण्डी एक ही रात में कई पौधों को काट सकती है। चूंकि ये खेतों में काफी तादाद में होती है अतः नुकसान का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अक्सर फसल की दुबारा बुवाई जरूरी हो जाती है।

तिलहनी फसलें

तिल कीट (तिल की सुण्डी) : यह कीड़ा तिल का प्रमुख नाशीकीट है। वयस्क गहरे पीले रंग का काफी बड़े आकार व मोटी कमर वाला शलभ होता है। सुडिंयां हरे रंग की खूब मोटी तथा लम्बी होती है। सुण्डियों के प्रतिशत के पिछले सिरे पर सींगनुमा कांटा उभरा होता हैं चलने में ये कीड़े कुछ सुस्त होते है। लेकिन पत्तिया काफी तेजी से तथा खूब खाते है जिससे फसल को काफी नुकसान होता है।

पिटिका मक्खी (गॉल फ्लाई) : वयस्क मक्खी मच्छर जैसी और लगभग उसी आकार की होती है। इसकी सफेद रंग की लटें कलियों में घुसकर वहां पिटिकाएं बनाती हैं, जिसके कारण कलियां सिकुडकर गिर जाती है। ऐसी कलियों से फलियां नहीं बनती है और उपज में भारी कमी होती है।

फली छेदक

वयस्क पतंग हल्के भूरे रंग का छोटा कीड़ा होता है इसकी हल्के हरे रंग की सुण्डियां शुरू में कोमल पत्तियां खाने के बाद तनों को नुकसान पहुँचाता है। सुण्डियों को एकत्रित करके नष्ट कर दें। फसल पर 1.5 प्रतिशत क्यूनलफॉस अथवा 2 प्रतिशत पैराथियान का भुरकाव करें। प्रभावित कलियों को तोड़कर पिटिकाओं को नष्ट कर देना चाहिए। इससे कीड़े का प्रसार रूकता है। कलियां लगने के समय फसल पर 0.03 प्रतिशत डाय कलोरक्स का छिड़काव अथवा 1.5 प्रतिशत क्यूनल फॉस का भुरकाव करें।

सम्पर्क सूत्रः **डा. सत्यवीर**

बाजरा के रोग व रोकथाम

1. जोगिया (डाउनी मिल्डयू व ग्रीन इयर) : स्कलेरोस्पोरा ग्रामिनीकोला नामक फफूँद से होने वाला यह रोग बाजरा पर दो प्रकार से आक्रमण करता है।

- तुलासिता – इस अवस्था में पतियों की निचली सतह पर सफेद फफूँद की धारियाँ दिखाई देती है। इसे पौधों की 20 से 30 दिन की अवस्था में देखा जा सकता है। रोग ग्रसित पौधे पीले व छोटे रह जाते हैं।
- जोगिया – इस अवस्था को पौधों में सिट्टे आने के समय देखा जा सकता है। सिट्टों में दाने के स्थान पर हरे–हरे मुड़े हुयें लम्बे रेशे निकलते है जिससे सिट्टे विकृत रह जाते है।

रोकथाम

- बीजों को एप्रोन–35 एस.डी. (6 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करके बोना चाहिये।
- रोग के लक्षण प्रारभिंक अवस्था में देखते ही रिडोमिल 25 डब्ल्यू. पी. (1 ग्राम प्रति लीटर) या मेनकोजेब (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिये।
- रोग रोधक किस्में जैसे आई.सी.एम.एच. 451, पूसा 23, पी.एच.बी. 57, राज 171, आदि लगानी चाहिये।

2. गूदिंया : यह रोग सिट्टों में दाने पड़ने के समय लगता है। सिट्टों पर दानों के स्थान पर छोटी छोटी गोन्द की तरह चिपचिपी बून्दे दिखाई देती है। फसल के पकने के समय यह पदार्थ सूख कर गहरे काले रंग के सख्त व बीज से थोड़े बड़े दाने जैसे हो जाते है। रोग्रसित सिट्टों पर स्वस्थ बीज बहुत कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं।

रोकथाम

- रोगग्रसित खेत से बीज को कार्य में लेने से पहले 20 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर ऊपर आये दानों को निथार कर फेंक दे एवं बाकी दानों को सुखाने के बाद काम में लें।

3. कण्डुआ (स्मट) : सिट्टे के कुछ ही दाने प्रभावित होते है जो अण्डेनुमा आकृति के हो जाते है व सिट्टे से बाहर तक निकल आते है। इनमें काले अथवा गहरे भूरे रंग का चूर्ण भरा रहता है। स्वस्थ बालियों में इसी चूर्ण से यह रोग फैलता है। रोग की उग्र अवस्था में कभी–कभी सब सिट्टे रोग से ग्रसित हो जाते है।

रोकथाम

- यह रोग चूंकि हवा में फैले बीजाणुओं से फैलता है इसलिये बीजोपचार से इस रोग की रोकथाम नहीं की जा सकती है।
- रोग के लक्षण देखते ही केप्टाफाल (0.2 प्रतिशत) के दो या तीन छिड़काव करने से रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता हैं।

4. रोली (रस्ट) : अधिकतर यह रोग फसल पकने से कुछ समय पहले ही आता है। इसलिये ज्यादा नुकसान नहीं करता है। परन्तु चारा उत्पादन व उसकी गुणवता पर काफी असर होता है। रोली से प्रभावित पौधों की निचली पत्तियों पर लाल–भूरे रंग के स्फोट उभर जाते है जो धीरे–धीरे गहरे भूरे रंग के हो जाते है। स्फोट अधिकतर पत्तियों की उपरी सतह पर ही होते है। परन्तु कई बार दोनों सतहों पर भी देखा जा सकता है।

रोकथाम

- जल्दी दिखाई देने पर मेन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) का एक छिड़काव काफी प्रभावशाली होता हैं
- रोगरोधक सहनशील किस्में जैसे आइ.बी.एच.1203, आइ.सी.एम.एल.11 खेत में लगानी चाहिये।

5. रूखड़ी (स्ट्राईगा) : यह एक परजीवी पौधा है जो अपना भरण पोषण बाजरा के पौधों पर करता है। फसल 1–2 माह की होने पर रूखड़ी के पौधे दिखाई देते हैं। अगले एक माह में इन पर गुलाबी या हल्के लाल रंग के फल आने शुरू हो जाते है। बाजरा के पौधे पर इसके लक्षण पत्तियों के पीली पड़ जाने के रूप में होती है। ऐसे पौधे अन्य पौधों की अपेक्षा छोटे रह जाते है और उन पर सिट्टे व दाने भी कम लगते है।

रोकथाम

- रूखड़ी के पौधों को देखते ही उन्हें उखाड़ कर फैंक देना चाहिये, ताकि बीज नहीं बन पाये।
- रासायनिक दवाओं में 2–4 डी नामक दवाई के अमीन साल्ट का 450 ग्राम प्रति 500 लीटर पानी में छिड़काव करने से भी रूखड़ी को समाप्त किया जा सकता है।

सामान्य उपचार

- अगेती बुवाई व गर्मी के मौसम में खेत की गहरी बुवाई करना।
- रोगी पौधों को खेत से उखाड़ कर नष्ट करना।
- खेत को स्वच्छ रखना व फसल चक्र को अपनाना।
- फसल चक्र में दलहनी फसलों को लेना।
- खेत को खरपतवार से मुक्त रखना।

सम्पर्क सूत्रः डा. **सतीश लोढ़ा**

ग्वार के रोग व रोकथाम

1. शाकाणु झुलसा (बैक्टीरीयल ब्लाईट) : उत्तर भारत में जहाँ भी ग्वार की खेती होती है यह रोग देखा जा सकता है। उग्र अवस्था में इस रोग से 45 से 50 प्रतिशत तक उपज कम हो जाती है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। प्रारम्भ में पत्तियों के दोनों तरफ शिराओं

के मध्य छोटे बड़े गोल, चिपचिपे धब्बे होते है जो अनुकूल वातावरण मिलने पर एक दूसरे में मिलकर पत्तियों को झुलसा देते हैं। पत्तियाँ समय से पूर्व गिर जाती हैं। उग्र अवस्था में तने पर लम्बाकार धारियाँ दिखाई देती है जिससे तना काला पड़ जाता है। पौधे पर फलियां कम लगती है व इनमें दाने भी कम हो जाते हैं।

छुटपुट वर्षा में अधिक आर्द्रता और तापमान से यह रोग ज्यादा फैलता है। रोग के जीवाणु बीज के माध्यम से एक से दूसरे वर्ष में प्रसारित होते है। एक बार लगने के बाद पत्तियों पर वर्षा के छीटों आदि से यह रोग एक पौधे से दूसरे पौधे पर तेजी से फैलता है। पौधों की एक माह की अवस्था सबसे ज्यादा नाजुक होती है।

रोकथाम

- रोग रोधी या रोग सहनशील किस्म लगाना। आर.जी.सी. 986, एच.ए.जी. 75, आ.जी.सी. 1002, एच. जी.एस. 365 आदि प्रमुख रोग रोधी किस्में हैं।
- बीजों को स्ट्रेप्टोसाइकलीन (0.025 प्रतिशत) से उपचारित करके बोना। आठ लीटर पानी में 2 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइकलीन घोल कर बीजों को दो घन्टों तक डुबाकर निकाले एवं छाया में सुखाकर बुवाई करें।
- रोग फैलने के अनुकूल मौसम होने पर 10 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइकलीन 100 लीटर पानी (0.01 प्रतिशत) में मिलाकर छिड़कना चाहिये। उग्र अवस्था हो तो दूसरा छिड़काव 15 रोज के पश्चात् कराना चाहिये।

2. शुष्क जड़ गलन (ड्राई रूट रोट) : यह रोग भूमि व बीज दोनों ही तरीकों से फेलती है। इसका प्रकापे कम वर्षा या दो वर्षा के बीच में लम्बे अंतराल होने पर ज्यादा होता है। रोग की उग्र अवस्था में 40 से 50 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। मुरझाये पौधों व हल्के भूरे रंग के तनों के रूप में इस रोग की पहचान हो सकती है। ऐसे पौधे आसानी से उखाड़े जा सकते है। रोगग्रस्त पौधों पर फलियां नहीं लगती है तथा जड़ों में नत्रजन सचंय करने वाली ग्रन्थियां नहीं बनती है।

रोकथाम

- बोने से पहले बीजों को कार्बोनडेजिम (2 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करें। इससे पहले स्ट्रेप्टोसाइकलीन से उपचारित करना चाहिये ताकि झुलसा व जड़ गलन दोनों का उपचार हो सके।
- फसल चक्र में बाजरा लेने से दूसरी वर्ष रोग कम होता हैं। जल्दी पकने वाली किस्मों को बोना चाहिये। पौधों की कतारों के बीच में खेत में नहीं काम आने वाले पौधों के अवशेषों की परत डालना एवं 3.5 टन मिंगनी की खाद मिलाना आदि उपयोगी है।

सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्र जहां रबी की फसंली भी ली जाती है, 2.5 टन सरसों की फलकटी व आधा टन सरसों की खली मिलाकर मई में खेत में डालनी चाहिये व तेज गर्मी के समय एक पानी देना चाहिये। तेज गर्मी में सरसों के कचरे के सड़ने पर जो खाद उत्पन्न होती है, वे इस रोग की फफूँद को काफी हद तक नष्ट कर देती है। सिंचाई की सुविधा कम होने पर बुवाई से पहले कम्पोस्ट खाद 4 टन प्रति हैक्टर मिलाने से भी रोग कम हो जाता है। कम्पोस्ट विलायती बबूल, खेत के खरपतवार आदि का बनाया जा सकता है।

3. पत्ती धब्बा (अल्टनेरिया लीफ स्पाट) : यह रोग फफूँद से होता है। पत्तों पर छोटे छोटे गहरे भूरे रंग के गोल या असमान धब्बे होते है, जो गोलाकार छल्लों का रूप लेते हैं आद्र मौसम में फैलकर पत्ती के ज्यादातर भाग को झुलसा देते है। रोग की उग्र अवस्था में फलियां कम लगती है व दोनों का आकार छोटा होता है। यह रोग बीजों द्वारा फैलता है।

रोकथाम

- रोग रहित क्षेत्रों से उत्पन्न बीजों को काम में लेने से इस रोग की रोकथाम हो सकती हैं

- रोग सहनशील किस्में जैसे एच जी एस 365, आर.जी.सी. 986 आदि बोनी चाहिये।
- रोग के लक्षण दिखते ही कापर आकसीक्लोराइड़ (0.2 प्रतिशत) को स्ट्रेप्टोसाइकलीन के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिये। इस प्रकार शाकाणु झुलसा व पत्ती धब्बा का एक साथ ही उपचार किया जा सकता है।

2. छाछया (पाउडरी मिल्ड्यू) : यह रोग ओइडोपसिस टाऊरिका नामक फफूँद से होता है। यद्यपि राजस्थान के मरू क्षेत्रों में इसकी शुरूआत फसल के पकने के कुछ ही समय पूर्व होती है परन्तु गुजरात के क्षेत्रों में यह काफी समय पहले ही देखा जा सकता है। यह रोग सिर्फ पत्तियों पर ही आक्रमण करता है। पत्तियों पर गहरे सफेद रंग के धब्बे हो जाते है जो निचली सतह पर ही अधिक होते है। उष्ण तापक्रम (35 डिग्री से.) कम आद्रता (50 प्रतिशत) व तेज धूप इसके फेलने में सहायक होते है। रोग की उग्र अवस्था में पत्तिया जल्दी गिर जाती है।

रोकथाम

- गन्धक युक्त फफूँदनाशक (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव सबसे प्रभावकारी व सस्ता हैं
- डिनोकेप, ट्राईडीमोर्फ, आवि का छिड़काव (0.1 प्रतिशत) भी काफी प्रभावशाली रहता है लेकिन थोड़ा मंहगा है।
- स्ट्रेप्टोसाइकलीन (0.01 प्रतिशत) व डिनोकेप (0.01 प्रतिशत) का सम्मिलित छिड़काव जीवाणु झुलसा व छाछया के लिये काफी प्रभावकारी है जिससे पानी की बचत भी होती है।

इन प्रमुख रोगों के अलावा ग्वार को कुछ पत्ती धब्बा रोगों से भी नुकसान पहुंचता हैं, जिनमें सरकोस्पोरा, मिरोथिसियम, कुरवुलेरिया व कोलीटोट्राईकम प्रमुख है। मौसम की अनुकूलता से ये धब्बे फसल की एक माह की अवस्था में देखे जा सकते है। उग्र अवस्था में ही ये रोकथाम मेनकोजेब या कापर आकसीक्लोराईड (0.2 प्रतिशत) के एक छिड़काव से की जा सकती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. सतीश लोढ़ा**

मरू सेना 1

पश्चिमी राजस्थान की भूमि से ही निकाली गई एक मित्र फफूंद ट्राईकोडर्मा हारजेनियम का जैविक सूत्रीकरण है। यह भूमि जनित रोगों जैसे आर्द्र गलन, जड़ गलन, उखटा या उबसूख, सूखा जड़ गलन आदि को उत्पन्न करने वाली हानिकारक फफूंदों जैसे फ्यूजेरियम, राईजोकटोनिया, मक्रोफोमिना फेजीयोलीना, पीथियम, गेनोडर्मा, एसपरजीलस आदि को भूमि में ही नियन्त्रण करने के काम आती है। शुष्क क्षेत्रों में लगाई जाने वाली फसलों जैसे ज्वार, ग्वार, मूंग, मोंठ, चँवला, चना, तिल, कपास, जीरा, मिर्ची धनिया आदि को इन भूमि जनित रोगों से 25–40 प्रतिशत तक नुकसान करते देखा गया है।

1. यह मित्र फफूंद हानिकारक फफूंदों पर परजीवी रहकर उनको नष्ट कर देती है या उनकी वृद्धि को नियंत्रित करती है।
2. मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व जो कि फसल को सीधे प्राप्त नहीं होते हैं, उन्हें भी यह आसानी से उपलब्ध कराने में सहायक रहती है फसल की वृद्धि अच्छी होती है।
3. पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होती है।
4. लाभदायक मृदा सूक्ष्मजीवों की संख्या में बढ़ोतरी करती है।
5. इस मित्र फफूंद को भूमि में नत्रजन एकत्रित करने वाले जीवाणु राईजोबियम के कल्चर के साथ–साथ फफूंद नाशकों जैसे विटावेक्स, मेटालेक्जिल, ट्रायोजोल्स व कीटनाशक फोरेट के साथ भी आसानी से प्रयोग कर सकते हैं।
6. इस मित्र फफूंद का सबसे बड़ा लाभ यह है कि ये फसल या भूमि में किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं छोड़ती है।

उपयोग करने की विधि

बीजोपचार : सबसे पहले एक मटके या ड्रम में बीजों को शुद्ध पानी से हल्का गीला कर लेवें। इसके बाद 4 ग्राम मरु सेना 1 का पाऊडर लेकर प्रति किलो ग्राम बीज के हिसाब से बीजों में उल्टा पुल्टा करके मिला देवें। उसके बाद छाया वाले स्थान पर साफ तिरपाल या टाट बिछाकर करीब 30–45 मिनट तक सुखाकर बुवाई के काम में लेवें। बीजोपचार बुवाई के कुछ घन्टे पहले ही करें।

भूमि उपाचार : सर्वप्रथम भूमि की हल्की जुताई कर लेवें ताकि भूमि भुरभुरी हो जोवें। फिर एक किलो मरु सेना को 50 – 60 किलो सड़ी हुई गोबर की खाद में अच्छी तरह मिलाकर थोड़ा पानी (2–3 लीटर) डाल देवें ताकि मित्र फफूंद अच्छी तरह खाद में मिल जावें। इस मिश्रण को छायादार स्थान पर 2–3 दिन तक रखकर एक हैक्टेयर भूमि में छिड़क कर खेत की जुताई कर देवें। इसके बाद बारिश आने पर या सिंचाई करके बीजो की बुवाई कर देनी चाहिये। विलाईती बबूल के अवशेषों की कम्पोस्ट उपलबध हो तो उसके साथ मरू सेना 1 को मिलाकर खेत में डालने से इस लाभदायक फफूंद की तादाद में ज्यादा वृद्धि होती है।

सावधानियाँ

1. मरू सेना 1 का कल्चर तीन माह से ज्यादा पुराना नहीं होना चाहिये। क्योंकि यह एक जीवित फफूंद है।
2. खुली तेज धूप या अधिक तापमान पर इसे नहीं रखें।

सम्पर्क सूत्रः **डा. सतीश लोढ़ा**

मरू सेना 2

मरू सेना 2, एक मित्र फफूंद एस्परजीलस वरसीकोलर का जैविक सूत्रीकरण है जो ग्वार, मूंग, मोंठ, चंवला, तिल, ज्वार आदि फसलों में लगने वाले शुष्क जड़ गलन रोग व जीरे की फसल में लगने वाले उखटा (उबसूख) रोग की रोकथाम के लिये काफी उपयोगी है।

1. यह मित्र फफूंद 65^{0}से. तक भूमि में तापक्रम में भी आसानी से जिन्दा रहने की क्षमता रखता है।
2. यह मित्र फफूंद हानिकारक फफूंदों परजीवी रहकर उनको नष्ट कर देती है या उसकी वृद्धि को नियंत्रित करती है।
3. पाधौं में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में फफूंद सहायक पाई गई है।
4. यह मित्र फफूंद भूमि से कम नमी होने पर भी जीवित रह जाती है। अतः शुष्क क्षेत्रों में इसका उपयोग सार्थक है।
5. यह मित्र फफूंद कुछ ऐसे रासायनिक तत्व निकालता है जिससे हानिकाकर फफूंद की वृद्धि रूक जाती है अथवा उनकी संख्या कम हो जाती है।
6. यह मित्र फफूंद लवणीय भूमि में भी अपनी क्षमता बनाये रखती है।
7. इस मित्र फफूंद का दूसरी मित्र जीवाणु बैसीलस फरमस (मरू सेना 3) के साथ अच्छा सामंजस्य है। दोनों को साथ में काम में लेने से मित्र जीवाणु जड़ों में ज्यादा संख्या में मौजूद रह सकते हैं।
8. इस मित्र फफूंद के कारण पौधों पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।
9. इस मित्र फफूंद का सबसे बड़ा लाभ यह है कि ये फसल या भूमि में किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं छोड़ती है।

उपयोग करने की विधि

बीजोपचार : सबसे पहले एक मटके या ड्रम में बीजों को शुद्ध पानी से हल्का गीला कर लेवें। इसके बाद 4 ग्राम मरू सेना 2 का पाऊडर लेकर प्रति किलो ग्राम बीज के हिसाब से बीजों में उल्टा–पुल्टा

करके मिला देवें। उसके बाद छाया वाले स्थान पर साफ तिरपाल या टाट बिछाकर करीब 30 – 45 मिनट तक सुखाकर बुवाई के काम में लेवें। बीजोपचार बुवाई के कुछ ही घन्टे पहले करें।

भूमि उपचार : सर्वप्रथम भूमि की हल्की जुताई कर लेवें ताकि भूमि भुरभुरी हो जावें। फिर एक किलो मरू सेना को 50 – 60 किलो सड़ी हुई गोबर की खाद में अच्छी तरह मिलाकर थोड़ा पानी (2 – 3 लीटर) डाल देवें। ताकि मित्र फफूंद अच्छी तरह खाद में मिल जावें। इस मिश्रण को छायादार स्थान पर 2 – 3 दिन तक रखकर एक हैक्टयर भूमि में छिड़क कर खेत की जुताई कर देवें। इसके बाद बारिश आने पर या सिंचाई करके बीजों की बुवाई कर देनी चाहिये। यदि नीम के अवशेषों का कम्पोस्ट उपलब्ध हो तो उसके साथ मरू सेना 2 को मिलाकर खेत में डालने से इस लाभदायक फफूंद की तादाद में ज्यादा वृद्धि होती है।

सावधानियाँ

1. *मरू सेना 2 का कल्चर तीन माह से ज्यादा पुराना नहीं होना चाहिये। क्योंकि यह एक जीवित* फफूंद है।
2. खुली तेज धूप या अधिक तापमान पर इसे नहीं रेखें।

सम्पर्क सूत्रः **डा. सतीश लोढ़ा**

मरू सेना 3

शूष्क जड़ गलन रोग मेक्रोफोमिना फेजीयोलीना नामक फफूंद के आक्रमण से होता है, जो इस क्षेत्र की फसलों जैसे ग्वार, चवलां, मूंग, मोंठ, तिल, ज्वार आदि को काफी नुकसान पहुंचाता है। यह रोग उग्र मात्रा में फैलता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में किये गये अनुसंधान परीक्षणों से सरसों प्रजाति के अवशेषों को तेज गर्मी के दौरान जमीन में मिलाने व एक सिंचाई देने से इस रोग के रोकथाम की एक नई तकनीक का विकास किया गया है। उसी दौरान सरसों के अवशेषों युक्त मिट्टी में एक जीवाणु–बेसीलस फरमस को खोजा गया जो मेक्रोफोमिना फफूंद की वृद्धि को रोकता है।

इस जीवाणु के उपयोग का सबसे बड़ा फायदा यह है कि यह जीवाणु असिंचित क्षेत्रों में भी उतना ही प्रभावशाली है जितना कि सिंचित क्षेत्रों में होता है।

विशेषता

1. इस जीवाणु के तापक्रम सहन करने की क्षमता 45^0 से. इस तरह यह तेज गर्मी वाले शुष्क क्षेत्रों में जीवित रह सकता है।
2. यह सिर्फ मेक्रोफोमिना फेजीयोलीना द्वारा उत्पन्न शुष्क जड़ गलन रोग के लिये अवरोधी है।
3. इसका ट्राईकोडरमा (मरू सेना 1) व एसपरजीलस वरसीकोलर (मरू सेना 2) के साथ सामंजस्य है।
4. यह जड़ नत्रजन ग्रंथि को दलहनों में बढ़ाता है।
5. पौधों की वद्धि में सहायक सिद्ध हुआ है।
6. यह फास्फोरस को जमीन में उपलब्ध कराने में सहायक है।
7. इस जीवाणु में जड़ों में स्थापित होने की क्षमता है जिसकी वजह से यह जड़ों में रोग उत्पन्न करने वाली फफूंद को रोकता है।

बीजोपचारः

1. एक लीटर या आवश्यकतानुसार पानी में 125 ग्राम गुड़ का घोल बनाकर मरू सेना 3 की एक थैली का कच्लचर मिला लें।

2. एक एकड़ (0.4 हैक्टेयर) के लिये आवश्यक बीज की मात्रा में इस कल्चर के घोल को छिड़के व बीजों को अच्छी तरह से मिलाते जाये।
3. कल्चर मिश्रित बीजों को छाया में साफ बोरी, टाट, या त्रिपाल पर उलट–पुलट कर शीघ्रता से सुखा कर बुवाई के काम में लेवें।
4. बुवाई से पहले खेत में सरसों प्रजाति के अवशेषों जैसे सरसों, मूली, फूल गोभी या बन्द गौभी से तैयार किया कम्पोस्ट 1 से 2 टन प्रति हैक्टयर में मिला सके तो इस जीवाणु से रोग को रोकने में और अधिक मदद मिलेगी।

उपलब्धता : मरू सेना 1,2 व 3 को किसान भाई, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर के कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र (एटिक) से जून व अक्टूबर माह में आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

सावधानियाँ

1. यह कल्चर लिग्नाईट में समुचित नमी देकर बनाया गया है। इस जीवाणु को लिग्नाईट में जिन्दा रखने के लिये नमी का होना बहुत जरूरी हे। अतः इसकी थैली धूप या तेज हवा वाले स्थान पर नहीं रखें।
2. उत्पादन तिथि से तीन माह के अन्दर ही जीवाणु मिश्रित कल्चर को काम में लेंवें।
3. कल्चर को बीजों में मिलाने का कार्य छायादार स्थान में ही करें व बीजों को सूखां कर बुवाई के काम में तुरन्त ले लेवें।

सम्पर्क सूत्रः **डा. सतीश लोढ़ा**

खेजड़ी सूखने की समस्या व समाधान

मरू भूमि के कल्पवृक्ष खेजड़ी में पिछले कुछ वर्षों से असमय सूखने की समस्या से किसान काफी चिंतित हैं। राज्य के नागौर, चुरू, सीकर, जोधपुर तथा झुंझनू जिलों में खेजड़ी की संख्या में तेज गिरावट आयी है। काजरी द्वारा किये गये अनुसंधान में दूसरी वजहों के साथ कीड़े बीमारियां लगना समस्या का प्रमुख कारण पाया गया। जहॉ सिरैम्बिसिडी कुल के *अकैन्थोफोरस सिरैटिकॉर्निस* कीट की बड़े आकार की लटें जड़ों को खोखला कर देती हैं, वहीं *गैनोडर्मा* कवक पेड़ों की परिवहन प्रणाली को बाधित कर देती है, जिसके कारण वे सूख जाते हैं। दोनों के साथ लगने से पेडों के सूखने की गति तेज हो जाती है।

सूखे हुए खेजड़ी के पेड़ को अक्सर तने समेत निकाल लिया जाता है। परन्तु जड़ों में लटें सुरक्षित रह जाती हैं, अतः कुछ गहरा खोद कर जड़े निकाल लेने से बची लटों को जड़ो के अन्दर से अथवा आसपास की मिट्टी से भी निकाल कर खत्म किया जा सकता है। लटों के वयस्क गहरे भूरे रंग के भृंगों को बरसात के मौसम में रात में एकत्रित कर उन्हें नष्ट किया जा सकता है। भृंगों को हाथ से नहीं छूना चाहिये, क्योंकि इनके पंजे तथा मुखांग बहुत पैने और नुकीले होते हैं, जिससे घाव होने की संभावना रहती है। खेतों में वृक्षों के तने के निचले भाग पर यदि भंपोड़ दिखायी दें, तो उन्हें तुरन्त हटा कर जला देना चाहिये। इससे उनका अन्य स्थानों पर प्रसार रुकेगा।

जमीन के अंदर लटों को नष्ट करने का अवसर दो अवस्थाओ में ही मिलता हैं एक तो जब वे अण्डों से निकल कर जड़ों की ओर जाती हैं और दूसरा जब वे जड़ों से निकल कर जमीन में प्यूपा बनने जाती है। यदि जड़ों के आसपास फोरेट कीटनाशक दवा डाल दी जाये तो इन लटों को नष्ट किया ज़ा सकता है। *गैनोडर्मा* कवक के रोगाणुओं को प्राकृतिक शत्रु कवक *ट्राइकोडर्मा* अथवा *एस्परजिलस टैरियस* द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। इसके लिए इनको गोबर की खाद के साथ मिला कर पेड़ों के नीचे गोलाकार खाई खोद कर मिट्टी में मिला कर खाई को वापस पाट कर पानी

दिया जाता है, जिससे नमी बनी रहे। कीटनाशक तथा प्राकृतिक शत्रु कवक का उपचार छह माह के अन्तराल से तीन बार करना चाहिये। इन उपचारों का असर तुरन्त नहीं होकर कुछ काल पश्चात होता है, क्योंकि कारक कीट तथा कवक दोनों का जीवन चक्र काफी लंबा होता है। प्रभावित वृक्षों को समय रहते चिह्नित कर उनका उपचार कर उन्हें सूखने से बचाया जा सकता है।

1 2 3 4

1 *अकैन्थोफोरस सिरैटिकॉर्निस* कीट की लट **2** *अकैन्थोफोरस सिरैटिकॉर्निस* का वयस्क (भृंग)

3 *गैनोडर्मा लुसिडम* की छतरी (भंपोड़) **4** खेजड़ी के उपचार का तरीका

सम्पर्क सूत्रः **डा. एम. पी. सिंह**

चूहा नियन्त्रण

राजस्थान में चूहों की विध्वंसक गतिविधियॉ बाजरे, मूंग, मोंठ, मूगंफली, उड़द, जीरा, टमाटर, मिर्च, गेहूँ, सरसों आदि प्रमुख फसलों में 5 से 15 प्रतिशत तक हानि पहुँचाती हैं। ये फसलें कट कर जब खलिहानों में आती है तो चूहे वहॉ भी पहुँच जाते हैं। वहॉ फसल को खाते भी है और बिलों में भी उठा कर ले जाते हैं। उपज के खलिहान से गोदाम तथा मण्डी तक पहुँचने तक चूहे इनका पीछा नहीं छोडते हैं। भण्डारण एवं आवासीय क्षेत्रों में भी चूहों का उत्पात सदैव बना रहता है।

चूहों की प्रमुख हानिकारक प्रजातियॉ : भारतीय जरबिल (बडी रतोल) भारतीय मरु जरबिल, नर्म रोम वाला चूहा, रोम युक्त पैरों वाला जरबिल (छोटी रतोल) फसली खेतों तथा चारागाहों में तथा घरेलू चूहा व घरेलू चुहिया रिहायशी क्षेत्रों व गोदामों में हानि पहुँचातें हैं।

चूहा नियंत्रण के उपाय

बिना किसी विष के प्रयोग द्वारा :

(अ) पिंजरों का प्रयोग करके भण्डारण एवं आवासीय क्षेत्रों में चूहों को आसानी से पकड़ा जा सकता है। पकड़े गये चूहों को कभी भी किसी और स्थान पर जीवित नहीं छोड़ना चाहिये। इन्हें पकड़ने के बाद चूहों सहित पिंजरों को 2.3 मिनट पानी में डुबो कर चूहों को मार देना चाहिये।

(ब) खतपतवार नियंत्रण से भी चूहों के आक्रमण में काफी कमी आ जाती है।

(स) चूहे ज्यादातर खेतों की ऊॅची–ऊॅची मेड़ों पर बिल बनाकर रहते हैं। यदि ये मेड़ें जरुरत के मुताबिक छोटी कर दी जायें तो भी चूहों का प्रकोप कम हो जाता है।

विष के प्रयोग द्वारा : जिंक फास्फाइड (काला जहर) तथा ब्रोमेडियोलोन प्रमुख चूहानाशी रसायन हैं। जिसमे जिंक फास्फाइड, अत्यन्त तेज असरकारक तथा ब्रोमेडियोलोन मध्यम असरकारक विष माने जाते हैं।

चुग्गा बनाने व प्रयोग की विधि

जिंक फास्फाइड : जिंक फास्फाइड एक अत्यन्त तेज असरकारक जहर होने की वजह से इसकी ग्राह्यता व नियंत्रण कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए विष चुग्गे से पहले चूहों को सादा चुग्गा

खिलाया जाता है। एक किलोग्राम सादा चुग्गा बनाने के लिए एक किलोग्राम अनाज ;बाजरा/गेहूंद्ध में 20 ग्राम खाने का तेल ;मूंगफली/सरसों/तिल मिलाकर चुपड लें। सादा चुग्गों को चूहों के ताजे बिलों में (10.15 ग्राम प्रति बिल की दर से) डाल देना चाहिये। ताजा बिलों की पहचान के लिए सर्वप्रथम खेत में व आसपास मौजूद सभी बिलों को बन्द करें। अगले दिन जितने बिल खुले मिले, उन्हें ताजा बिल कहा जाता है। सादा चुग्गा डालने के 1.2 दिन बाद उन्ही बिलों में विष चुग्गा डालना चाहिए। विष चुग्गा बनाने के लिये पहले सादा चुग्गा तैयार कर लें तथा उसमें निश्चित मात्रा में जिंक फास्फाइड पाउडर ;20 ग्राम प्रति किग्रा0 की दर सेद्ध बुरक कर फिर लकड़ी की छड़ी से खूब अच्छी तरह से मिलाना चाहिये ताकि विष पाउडर खाद्यान्न की तेलीय सतह पर एक जैसा चिपक जाये। इस चुग्गे की 6 से 8 ग्राम मात्रा प्रति बिल की दर चूहों के ताजे बिलों में खूब अंदर तक ढकेल देना चाहिये। इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि जहरीले दाने बिलों के बाहर नहीं बिखरें वरना इनसे अन्य पशु–पक्षी या वन्य जीव को हानि पहुँच सकती है। अगले दिन सूर्योदय से पहले खेत मे घूम कर मृत चूहों को इक्कठा कर लें और उन्हे जमीन मे गहरा दबा दें।

जिंक फॉस्फाइड चुग्गा देने के बाद भी कुछ चूहे नहीं मरते हैं। ऐसी परिस्थिति में जिंक फॉस्फाइड का प्रयोग पुनः सफल नहीं रहता है क्योंकि दूसरी बार इस चुग्गे को चूहे छूते तक नहीं। जिंक फॉस्फाइड चुग्गा देने के 4.5 दिन बाद बचे हुए चूहों के नियंत्रण के लिए ब्रोमेडियोलोन नामक विष चुग्गे को प्रयोग में लेना चाहिये।

ब्रोमेडियोलोन : इसके लिए पहले क्षेत्र के सभी बिलों को पुनः बंद करावें और दूसरे दिन खुले बिलों मे ब्रोमेडियोलोन नामक दवा का चुग्गा 15.20 ग्राम प्रति बिल की दर से डालें। ब्रोमेडियोलोन दवा का चुग्गा बाजार मे बने बनाये चुग्गे के रुप मे मिलता है। वैसे बाजार में यह विष सान्द्र पाउडर रुप मे भी मिलता है, जिससे हम ताजा चुग्गा स्वंय बना सकते हैं। मान लीजिये हमें एक किलोग्राम ताजा चुग्गा बनाना है तो एक किलोग्राम अनाज में 20 ग्राम तेल मूंगफली/सरसों/की जरुरत होगी। तत्पश्चात इसमे 20 ग्राम ब्रोमेडियोलोन सांन्द्र पाउडर बुरक कर अच्छी तरह से मिला कर ताजा विष चुग्गा तैयार किया जा सकता है।

इस प्रकार जिंक फास्फाईड तथा ब्रोमेडियालोन के क्रमवार प्रयोग से खेतों में चूहों को प्रभावी तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है और फसलों को चूहों से बचाया जा सकता है।

अन्नभण्डारण, गोदामों तथा रिहायशी क्षेत्रों में चूहा नियंत्रण हेतु जिंक फॉस्फाइड चुग्गे का प्रयोग नहीं करें। ऐसे क्षेत्रों के लिये ब्रोमोडियालोन का चुग्गा, चुग्गा पात्रों में 3.4 दिन के लिए प्रयोग करना चाहिए।

विषचुग्गे का प्रयोग कब करें ?

फसली खेतों में वर्ष में दो बार, मई–जून तथा नवम्बर–दिसम्बर यानी खरीफ एवं रबी फसल की बुवाई से पहले।

रिहायशी क्षेत्रों, अन्नभण्डारण व गोदामों में चूहा पकडने वाले पिजरों का उपयोग उचित रहता है। इसके अतिरिक्त ब्रोमोडियालोन के चुग्गे का प्रयोग भी किया जा सकता है। अतः इनका प्रयोग क्षति के आधार पर आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। ऐसे क्षेत्रों में चूहा नियंत्रण हेतु जिंक फॉस्फाइड चुग्गे का प्रयोग नहीं करें।

चूहानाशी विष के प्रयोग के समय सावधानियाँ

- चूहानाशी विष तथा विष चुग्गा ताले बंद अलमारी में रखें ताकि बच्चों की पहुँच से दूर रहे।
- विष चुग्गा खुली जगह अथवा हवादार कमरे में ही बनाना चाहिये। चुग्गा बनाने एवं बिलों में डालने हेतु प्रयोग में लाये गये बर्तन, लकड़ी की छड़ी अथवा पत्तों आदि को नष्ट कर देना चाहिये। खाली हुए डिब्बों को नष्ट करके जमीन में दबा देना चाहिये।

- पशु, पक्षियों, मुर्गियों तथा अन्य वन्य जीवों को ध्यान में रखते हुए विष चुग्गा सिर्फ बिलों के अन्दर गहराई में डालना चाहिये।
- विष चुग्गा प्रयोग करने वाले व्यक्तियों के हाथों में किसी प्रकार का घाव नहीं होना चाहिये। कार्य समाप्त होने के बाद हाथ साबुन से अच्छी तरह धोना चाहिये।
- नियंत्रण कार्यक्रम के बाद सभी मरे चूहों को एकत्रित करके जमीन में गहरा दबा देना चाहिये, क्योंकि इन्हें खाकर कुत्ते, बिल्ली, चील–कौवे तथा अन्य परभक्षी जीव अकारण ही मर सकते हैं।

सम्पर्क सूत्रः **डा. आर. एस. त्रिपाठी**

शुष्क क्षेत्र जैविक खेती से सीमित साधनों का सदुपयोग

शुष्क क्षेत्र में वर्षा की कमी व अनिश्चितता दोनों के ही कारण रसायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग अत्यधिक जोखिम भरा होता है अतः इनका उपयोग बहुत कम या न के बराबर होता है किन्तु पोषक तत्वों का उचित प्रबन्धन न होने पर पैदावार में कमी हो सकती है अतः यदि जैविक खाद जो कि कृषि व पशु अवशेषों से बनती है। उसका भरपूर उपयोग करने से न केवल बाहरी साधनों का खर्चा बचता है वरन स्वयं के पास उपलब्ध साधनों का सदुपयोग होता है। जैविक खाद जिसे सामान्य भाषा में कम्पोस्ट भी कहते हैं एक तीन फुट गहरे गड्डे में 3–4 महिने में तैयार हो जाती है इसके उपयोग से उदई दीमक लगना, फसल जलना या खरपतवार पनपना जैसी समस्यें नहीं पैदा होती है। जो कि कच्ची खाद डालने से होती है। साथ ही कम्पोस्ट के प्रयोग से भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है जिससे 25–30 दिन के अन्तराल पर भी वर्षा होने से फसल से ठीक उपज मिल जाती हैं इसी प्रकार नीम जो कि शुष्क क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है इसके बीज का तेल, खल, पत्ती आदि के प्रयोग से फसल का रोग–कीटों से रक्षण सस्ता व सरलता से कया जा सकता हैं दलहन फसलें जैसे मोंठ, ग्वार को फसल चक्र में अवश्य शामिल करना चहिये जिससे मृदा उर्वरता बनी रहे। इस प्रकार जैविक साधानों के प्रयोग से वर्षा की अनिश्चित स्थिति से सुरक्षा स्वयं के साधनों से ही लाभदायक खेती जा जा सकती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. अरूण शर्मा**

तकनीकी उद्यान में औषधीय पौधें के कृषिकरण का प्रदर्शन

भारत के शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले औषधीय पौधों में से कुछ महत्वपूर्ण पौधों के कृषिकरण की तकनीकी, इस उद्यान में आप देख सकते है। निम्नलिखित औषधीय पादप यहॉ उगाये गए है।

- ग्वार पाठा : उदर रोग, यकृत के विकारो, चर्म रोगों, जलने आदि पर गुणकारी
- सोनामुखी : कब्जनाशक, पेट के कीड़े मार देता है।
- ग्वारपाठा (मीठा) : गठिया, वायु विकारो, में गुणकारी
- निर्गुन्डी : इसकी पत्तियों का उकाला जोड़ो के दर्द, प्रतिशत दर्द को ठीक करता है।
- गुग्गुल : आयुर्वेद का महायोग औषध, ह्रदय रोग, गठिया कोलेस्ट्रोल मे गुणकारी
- सरफोंका (बियानी) यकृत के सभी रोगो में गुणकारी
- वसाका : कफ नाशक, खासी बुखार में अति लाभदायक
- अश्वगन्धा : शक्तिवर्धक, गठिया एवं वायुबुखार में हितकारी
- सदाबहार : मधुमेह (शुगर), कैन्सर उपचार में लाभकारी
- शतावरी : शक्तिवर्धक, मूत्रवर्धक, शीतक

- गिलोय : बुखार, पीलिया, में लाभदायी, कैन्सर हेतु वरदान औषधि
- दमाबेल : दमा की बीमारी, श्वसन विकारों में उपयोगी
- वज्रदन्ती : दांत विकारो में उपयोगी
- तुलसी : वाइरल बुखार, खाँसी, कैन्सर उपचार में उपयोगी
- कौंच : पौरुष शक्तिवर्धक टॉनिक
- जमालघोटा : पेट विकारो में उपयोगी ।

मुख्य रुप से जैविक खाद के 2.5 टन प्रति हैक्टर व 5 टन प्रति हैक्टर तथा बिना जैविक खाद के, तीन प्रायोगिक क्यारियों में उपरोक्त में से क्र. सख्या 1 से 9 तक के पौधो को उगाया गया है। इनकी बढ़वार, उपज एवं क्वालिटी के आधार पर प्रतिवर्ष मूल्यांकन किया जाना जारी है। प्रारम्भिक परिणामों के आधार पर कह सकते है कि ग्वारपाठा हेतु 2.5 टन प्रति हैक्टर जैविक खाद अधिक हितकारी है। वसाका एवं सदाबहार हेतु ज्यादा जैविक खाद (5 टन प्रति हैक्टर) लाभकारी है। तुलसी एवं सोनामुखी की अधिकतम उपज (पत्तों की) 2.5 टन प्रति हैक्टर जैविक खाद वाली क्यारी में प्राप्त हुई है। कमांक 10.16 तक वर्णित पौधे बिना किसी खाद के लगाए गए हैं।

सम्पर्क सूत्रः **डा. सुरेश कुमार**

मरु वानस्पतिक उद्यान

काजरी परिसर में लगभग 20 एकड़ क्षेत्र में अवस्थित उपरोक्त उद्यान 40 वर्ष पूर्व स्थापित किया गया है। इस उद्यान को 24 विभिन्न भागो में बांटा गया है। इस उद्यान में विशेषज्ञ तौर से शुष्क क्षेत्रों में उगने वाले पौधो को लाकर लगाया गया है ताकि इनकी शुष्क क्षेत्रों में उगने की संभावनाओं का पता लगाया जा सके। इस उद्यान में 150 प्रजातियो के पौधें हैं जिनमे वृक्ष, झाड़ एवं अन्य छोटे पौधें और लतायें भी सम्मिलित है। रंग बिरंगे फूलों वाली 18 बोगनवेलिया की प्रजातियां जो कि यहां जलवायु के लिये उपयुक्त है इस उद्यान में लगाई गयी है। लगभग 50 प्रजातियां केक्टस एवं रसीय पादपो की एक विशेष्ज्ञ ब्लाक में लगायी गई है। इनमें फुटबाल केक्टस एंवं ग्राफटेड केक्टस देखने योग्य है। केक्टस की एक प्रजाति जो कांटा रहित थोर के नाम से जानी जाती है, वह पशुओं को सूखे चारे के साथ मिलाकर खिलाने के काम आती है। वह भी यहॉ लगाई गयी है।

औषधीय पौधों के ब्लाक में लगभग 60 प्रजातियां एक वर्षीय एवं बहुवर्षीय, लगाई गई है इनमें सर्पगन्धा, गुगुल, सिन्दूरी चित्रक, बहेड़ा, अस्थमा बेल, गिलोय, शतावरी, खस, सागर गोटा, बड़ा गोखरु, हरमल, खीरखीप, हडजोड़ इत्यादि प्रमुख हैं।

ग्वार पाठा ब्लाक में पश्चिमी राजस्थान के लगभग सभी स्थानों से और गुजरात के जामनगर से विभिन्न प्रजातियॉ लाकर लगायी गई है ताकि इनकी अनुकूलता एवं उपयोगिता सिद्व की जा सके। विभिन्न तरह के खारे एवं मीठे ग्वार पाठे यहाँ के विशेष्ज्ञ आकर्षण है।

कई प्रजातियो के देशी क्रोटोन, लिली, मनी प्लान्ट, अग्रेजी कोटोन, फूलदार एवं छायादार पौधें उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त लुप्त होती जा रही गुग्गुल की विभिन्न प्रजातिया एक विशेष ब्लाक में संरक्षित की जा रही है।

अर्जुन का वृक्ष जिसकी छाल हृदय रोगों में राम बाण का काम करती है, उसे भी उद्यान में संरक्षित किया गया है। इसी तरह मधुमेह यानि शुगर की बीमारी में उपयागी गुड़मार बेल भी एक अन्य ब्लाक में देखी जा सकती है।

इसके अलावा विश्व के विभिन्न मरुस्थलीय क्षेत्रों से लाये गये पौधें अन्य ब्लाक में उगाये गये है। जिनमें मैक्सिकों, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका प्रदेशों के पौधे प्रमुख है। लेकिन भारतीय

मरुस्थल की वनस्पतियों को प्राकृतिक रुप से एक विषेष्ज्ञ ब्लाक में संरक्षित किया गया है। उपरोक्त वर्णित पौधों में से कई प्रजातियों की पौध यहां की पौधशाला में बेचने हेतु भी उपलब्ध है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. सुरेश कुमार**

शुष्क क्षेत्रों में चारा घासों की खेती

बहुवर्षीय चारा घासें जैसे सेवण, धामण, मोडा धामण, ग्रामणा, मुरठ, बुरड़ा आदि गुणवत्ता का चारा देने के साथ–साथ भूक्षरण रोकने और भू–उर्वरता बढ़ाने में भी उपयोगी है।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा विकसित तकनीकें अपनाकर चारा घासों की खेती से अधिक उत्पादन संभव है।

उचित घास का चयन : बहुवर्षीय घासों का चयन भूमि की दशा, वर्षा की मात्रा व पशुओं की आवश्यकतानुसार करें। मारवाड़ अंजन (काजरी 75), काजरी 358 व अंजन घास (रूदार धामण) अधिक व लम्बे समय तक पैदा देने वाली किस्में हैं। मारवाड़ धामण (काजरी–76) मोडा धामण की उन्नत किस्म है।

भूमि की तैयारी : धान्य फसलों की तरह ही खरपतवारों व अवांछित झाड़ियों को निकाल कर, दो जुताई करके खेत को समतल करें। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें। यह कार्य जून महीने तक पूरा कर लेना चाहिए।

बुवाई का समय : बुवाई के समय भूमि में नमी की उपलब्धता का विशेष महत्व है। पश्चिमी राजस्थान में घासों की बुवाई के लिये मानूसन की प्रथम वर्षा के बाद का समय उचित है। अगर पानी की उचित व्यवस्था हो तो सर्दी के मौसम के अतिरिक्त कभी भी बुवाई/रोपाई की जा सकती है।

बीज की मात्रा : चारा घासों की जाति के अनुसार बीज दर की मात्रा अंजन (रूदार धामण) और मोडा धामण के लिए 5–6 सेवण के लिए 6–7 और ग्रामणा के लिए 2–2.5 कि.ग्रा./हे. है।

बुवाई की विधि

(अ) बीज द्वारा (सीधे बीज द्वारा) : बीजों को छिड़क कर या पंक्तियों में बोया जा सकता है। घासों के लम्बे जीवन के लिए पंक्तियों में बोना उचित रहता है। पक्ति से पंक्ति की दूरी सेवण, ग्रामणा, मुरठ व बुरड़ा के लिए 75 से 100 से.मी. रखें। अच्छी भूमियों में अंजन व मोडा धामण के लिए 50 से 75 से.मी. रखें। सेवण, ग्रामणा, मुरठ व बुरड़ा में 10000 पौधे/हे. उपयुक्त हैं। बीज व खेत की गीली मिट्टी को 1:5 अनुपात में (आयतन से) अच्छी तरह मिश्रण बनाकर 1.5 से 2.0 से.मी. गहरे कूंड़ों में बुवाई करें। ध्यान दने योग्य बात यह है कि बीजों पर मिट्टी कम से कम आये।

(ब) नर्सरी में तैयार पौध से घास लगाना : घास के बीजों को मई महिने में नर्सरी में बो दें, ताकि जुलाई में पर्याप्त वर्षा होते ही पौध को खेत में रोपित किया जा सकें। पौध उचित दूरी पर रोप कर चारों तरफ से अच्छी तरह से दबा दें। पौध लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य करें। रोपाई के 3–4 दिन बाद तक पानी की कमी न होने दें। इस विधि से बुवाई सीधे बीज द्वारा बुवाई की अपेक्षा कुछ मंहगी अवश्य पड़ती है और श्रम भी अधिक लगता है, परन्तु चारागाह का विकास एक समान एवं अच्छा होता है। इस विधि की सफलता शुरू में सिंचाई जल की निरन्तर उपलब्धता पर निर्भर करती है।

(स) जड़ों द्वारा : पुराने स्थापित घास की जड़ों को रोपित करके भी चारा घासें लगाई जा सकती है। लगाते समय 'राइजोम्स' का उचित ध्यान रखना चाहिये। पानी, श्रम व लागत आदि पौध लगाने की विधि के समान ही है।

(द) बीजों की गोलियाँ बनाकर : ऊबड–खाबड़ भूमि में या वायु गति तेज होने पर बीज की गोलियाँ बनाकर बुवाई की जा सकती है। गोलियाँ बनाने के लिये 100–125 ग्राम बीज को 3–3.5 कि.ग्रा. काजी मिट्टी, 250 ग्राम बालू रेत, 250 ग्राम अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद में अच्छी प्रकार मिला लें। गोली बनाने की मशीन का भी प्रयोग कर सकते हैं। गोलियाँ लगभग 4 मि.मी. व्यास की होनी चाहिये। एक हैक्टर में 60–80 कि.ग्रा. गोलियों की आवश्यकता होती है।

रोपित चारागाहों का रखरखाव : बहुवर्षीय खरपतवारों जैसे बुई, सिणिया, आक आदि को समय–समय पर निकालते रहना चाहिये। ऐसा नहीं करने पर इनके अनियंत्रित विस्तार से चारा घासें खत्म होने लगती है। चारागाहों की उत्पादकता बनाये रखने के लिये वर्षा ऋतु में हल या ट्रेक्टर चालित कलटीवेटर से घास की लाइनों के बीच गुड़ाई करना आवश्यक है। चारागाहों को नुकसान या पौधे कम होने पर दुबारा बुवाई आवश्यक है। स्थापित चारागाहों के निरन्तर उपयोग, विषम जलवायु आदि से पौधे कम होना संकेत है कि चारागाहों की दुबारा बुवाई की जाये। पुराने चारागाहों में बीजों से दुबारा बुवाई की जा सकती है।

चारागाह सुरक्षा : चारागाह के चारों तरफ बाड़ लगाना अति आवश्यक है। यदि चारागाह गोचर भूमि में है तो उचित चराई व्यवस्था तथा उत्तम देखभाल गाँव वालों के सहयोग से ही संभव है। चारागाह के चारों तरफ एक मीटर गहरी व 1.25 मीटर चौड़ी खाई खोदें। खाई की मिट्टी से अन्दर की तरफ ऊँची मेंड बनायें। मेंड के साथ–साथ बाड़ (झाड़ियाँ तथा छायादार वृक्ष) भी लगाये। नागफनी, थोर, इजराइली बबूल, गूंदा, झरबेरी आदि बाड़ के लिये उपयुक्त झाड़ियाँ तथा वृक्ष हैं।

चराई व्यवस्था : चारा घास लगाने के प्रथम वर्ष में पशुओं से चराई नहीं करवानी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से घासें खत्म हो जाती हैं। प्रथम वर्ष में घास काटकर खिलाना ही उचित है। द्वितीय वर्ष और उसके बाद कोई सक्षम विधि जैसे नियंत्रित चराई, एकान्तर चराई या बाधित क्रमिक चराई आदि अपनाई जा सकती हैं बाधित क्रमबद्ध चराई के अनुसार चराई करायें तथा चौथे हिस्सें की घास को बीज उत्पादन के लिये रखें। अधिक चराई से कम पैदावार वाली वार्षिक घासों एवं खरपतवार के उगने की संभावना अधिक होती है। काटकर खिलाने से चारे की उपज अधिक मिलती है। कटाई का उचित समय 50 प्रतिशत फूल आने का होता है। कटाई या चराई प्रतिवर्ष आवश्यक है।

चारा–बीज एकत्रीकरण व भंडारण : चारागाह का कुछ हिस्सा बीज उत्पादन हेतु बिना चराई के रखना चाहिये ताकि पुनः बुवाई के लियें बीज उपलब्ध हो सके। चारा घासों में प्रायः अगस्त महिने में फूल आने प्ररमभ हो जाते हैं व सितम्बर में पकने शुरू हो जाते हैं। अक्टूम्बर तक यह प्रक्रिया चलती रहती हैं। वर्षा सामान्य होने पर बीज थोड़ी देर में पकते हैं। इस प्रकार फूल आना व बीज पकना प्रायः 15 अगस्त से 31 अक्टूम्बर के मध्य होता है। भूमि में उचित मात्रा में नमी बनी रहने पर वर्ष पर्यन्त फूल व बीज बनते रहते हैं। पके हुए बीज हाथों द्वारा बालों से खींचकर इकट्ठे किये जाते हैं। बीज पकते समय थोड़ा भी प्रतिकूल मौसम बहुत नुकसान पहुँचा सकता है। अतः बीज पकते ही इकट्ठे करने चाहिये। फूल खिलने के 12–16 दिन बाद का समय बीज एकत्रित करने का उचित समय है। सेवण घास में बालों के उपरी भाग में बीज पककर गिरने लगते है। अतः पकने के अनुसार ही बीज एकत्रित करें। एकत्रित बीज धूप में कई दिन तक सुखाकर व सफाई करके जूट की बोरियों में भरकर नमी रहित भंडार गृह में रखना चाहिये।

सम्पर्क सूत्रः **डा. एम. पी. राजोरा**

वन चरागाह पद्धति के लिए घास, पेड़ एवं झाडियों का चयन

वन चरागाह पद्धति के लिए पेड़, पौधों, झाडियों एवं घासों का चयन वर्षा की मात्रा और भूमि के प्रकार के अनुसार किया जाता है। पेड़ों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिऐ कि जिन वृक्षों की पत्तियाँ चारे के रूप मे उपयोगी होती हैं उनमें तेज वृद्धि, पत्तियाँ पशुओं

के खाने योग्य हों, काटने के बाद उनमें शाखा पुनः उत्पादन की क्षमता हो। सूखे को सहन करने की भी क्षमता एवं विपरित परिस्थितियों में भी उगने की क्षमता आदि गुण भी होने आवश्यकता हैं। पेड़ एवं झाड़िया छायादार होने चाहिए ताकि गर्मियों में पशुओं का तेज धूप से बचाव मिल सके । शुष्क क्षेत्र में उगाये जाने वाले वृक्षों में अजंन (*हाईविकिया बाईनेटा*) एवं मोपेन (*कोलोफोस्परमम मोपेनो*), बहुवर्षीय घासें में धामण, सेवन ओर, दलहनी फसलों में सेम चवला को वन चारागाह पद्धति के लिए चयन किया जा सकता है।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में वन चरागाह पद्धति के लिए किये गये एक प्रयोग में धामण/सेवन एवं सेम को *हार्डविकिया बाइनेटा* व मोपेन के पेड़ों की बीच पट्टियो में उगाया गया। प्रयोग के परिणाम दर्शाते हैं कि प्रारम्भिक अवस्था मे पेड़ों की वृद्धि धीमी होने से धास की उपज पर विपरीत प्रभाव नही पड़ा। सेवण तथा धामण घास को अकेले पड़ों के बीच पट्टी में बोने से शुष्क पदार्थो की अधिक उपज प्राप्त हुई और दलहनी फसल चवला अथवा सेम के साथ समानान्तर पट्टिओं में बोने से कम वर्षा वाले वर्षो में चारे की उपज मे थोड़ी कमी जरूर हुई परन्तु चारे की गुणवत्ता (क्रूड प्रोटीन की उपज) मे बढ़ोतरी हुई। इस पद्धति मे 40 कि॰ ग्रा॰ नत्रजन प्रति हैक्टर डालने से 15 प्रतिशत की उपज मे वृद्धि हुई। इसके अलावा पाँचवे वर्ष के उपरान्त पड़ों से पत्तियाँ एव जलाऊ लकड़ी प्राप्त होने लगी। इस पद्धति में प्रतिवर्ष 15–20 क्विंटल सूखे चारे के अलावा लगभग 1–2 क्विंटल सुखी पत्तियाँ एवं 2–3 क्विंटल जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है। वन चरागाह पद्धति में जब उन्नत घास, जैसे अंजन या सेवण घास को दलहनी फसल के साथ मिश्रित करके बुवाई करते हैं तो प्रति हेक्टर 1–2 गायें या 6–8 भेड़ों या बकरियों के लिए पर्याप्त चारा मिलता है।

वन चरागाह पद्धति से लाभ

- अधिक एवं पौष्टिक चारे का उत्पादन
- ईंधन के लिए लकड़ी
- कम एवं अनउपजाउ भूमि का उपयोग
- भूमि की उर्वरकता में वृद्धि
- मृदा क्षरण को रोका जा सकता
- भूमि की जल धारा में वृद्धि
- पशुओं को धूप, एवं गर्मी से बचाव
- पर्यावरण संतुलन।

सम्पर्क सूत्र : **डा. एम. पाटीदार**

पशुओं को खिलायें तुम्बे की खल

तुम्बे की बेल प्राकृतिक रूप से मरूस्थल में बहुतायत व कम वर्षा में भी उग जाती है। तुम्बे के फल हलके से गहरे पीले रंग, व 10 – 20 सेमी॰ गोलाकार तक के प्राय होते है। तुम्बे में बीज व गूदा का अनुपात 1 : 3 का होता है। वह एक हैक्टयर में 1 – 2 क्विंटल बीज प्राप्त हो जाते है जिनमें 14 से 22 प्रतिशत तक औसतन तेल होता है।

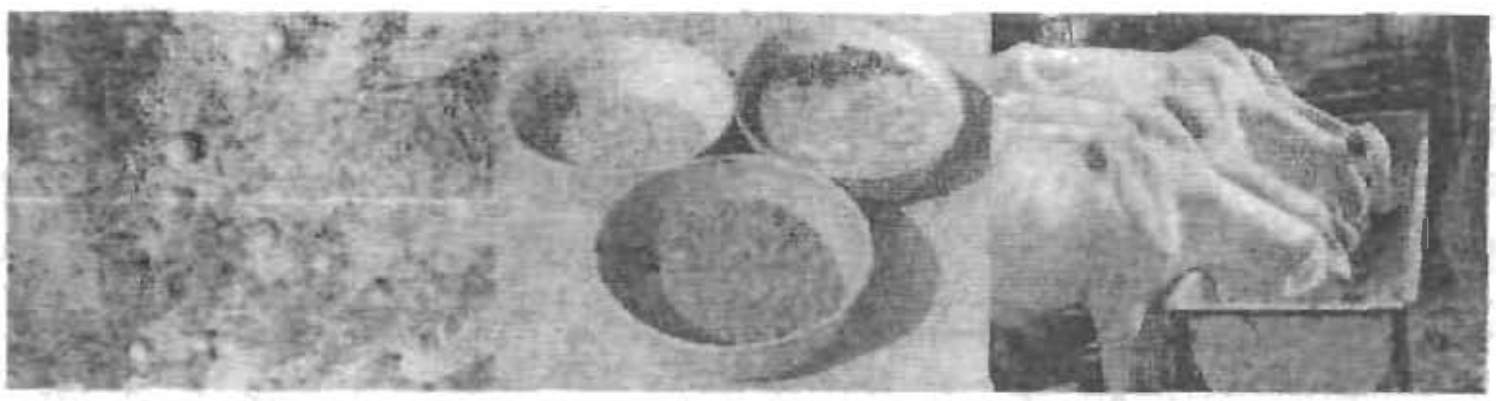

तेल निकालने के बाद जो खल बच जाती है उसमें 16 से 22 प्रतिशत प्रोटीन, वसा 3.95, कूड़ फाईबर 42.0 व नत्रजन मुक्त सार 25.95, व राख मय लवण 11.2 प्रतिशत पाये जाते है। तुम्बे की खल अत्यन्त ही कम मूल्य रूपये 400/– प्रति क्विंटल है।

- मरू क्षेत्र की सबसे सस्ती खल "तुम्बे की खल"। यह मरू क्षेत्र में बहुतायत में उपलब्ध है। तुम्बे की खल में 18 से 22 प्रतिशत प्रोटीन होता है।
- गायों को 25 प्रतिशत तक बाटें में मिलाकर खिलायें व अधिक उत्पादन लें। भेंड़ एवं बकरियों को 50 प्रतिशत तक बाटें में मिलाकर खिलायें।
- आवश्यकतानुसार बांटा देने से मारवाड़ी नस्ल की बकरी से 56 प्रतिशत तक हर ब्यात में दो बच्चे प्राप्त करें।
- उत्पादन खर्च में 18 से 35 प्रतिशत तक की कमी पायें। इस तरह किसान जल्दी व ज्यादा मुनाफा कमा लेगा।

अकाल के समय में सस्ता व संतुलित बांटा :

- तुम्बे बीज की खल को दुधारू गायों के बाटें में 25 प्रतिशत मिलाकर खिलाये। इससे बांटें के मुल्य में 25 प्रतिशत की कमी आ जाती है।
- दुधारू बकरियों को 50 प्रतिशत तक बांटे में तुम्बे की खल मिला कर अधिक दुग्ध उत्पादन लेव बांटे के मुल्य में 40 प्रतिशत की कमी प्राप्त करें।
- भेंड़ों को 50 प्रतिशत बांटे में तुम्बे की खल मिलाकर खिलाये व शारीरिक बढ़ोत्तरी एवं ऊन उत्पादन में 20–25 प्रतिशत बढ़ोत्तरी पाये।

भूसा/ बाजरी कुतर चारें में तुम्बे की खल मिलाकर खिलाने से पोषक तत्वों की कमी दूर हो जाती है व पाचन शक्ति अच्छी रहती है।

सम्पर्क सूत्र : डा. बी. के. माथुर

यूरिया उपचार पद्धति से सूखे चारे की पौष्टिकता कैसे बढ़ाऐं

पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में पशुओं को सामान्यतः चराई के बाद सूखा चारा जैसे ज्वार/ बाजरे की कड़बी, कुतर, खाकला खिलाया जाता है जिसमें अपाच्य रेशों की मात्रा अधिक व पाच्य प्रोटीन की मात्रा नगण्य होती है जिस कारण पशु कुपोषण के शिकार होते है व दुध उत्पादन, प्रजनन एवं वृद्धि दर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रदेश में सूखे चारे का कोई विकल्प न होने की वजह से सूखे चारे की पौष्टिकता बढ़ाने के तरिके ढुढ़ना एक महत्वपूर्ण तरिका है। यूरिया उपचार पद्धती से सूखे चारे की पोषक गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है।

यूरिया उपचार पद्धती क्या है ?

- 100 किलो सुखे चारे के उपचार के लिए 4 किलो यूरिया की 40 से 50 लीटर पानी में घोल दिया जाता है।
- 50 किलो सूखे चारे को साफ जमीन जो सीमेन्ट से बनाई हो, पर समान रूप से फैला दें।
- इस सूखे चारे के ऊपर 20–25 लीटर (आधा) यूरिया का घोल समान रूप से छिड़के जिससें चारा अच्छी तरह से गीला हो जाये। इसके लिए बगीचे में पानी के लिए उपयोगी झारी का भी उपयोग हो सकता है। इस गीले चारे को अच्छी तरह हाथ व पैर से दबाया जाए जिससें मिश्रण पूरी तरह चारे में लगे व चारे में हवा न रहें।
- इसी चारे के ऊपर दुसरे 50 किलो चारे की परत समान रूप से फैलाये व आधा बचा हुआ यूरिया का घोल ऊपर वर्णित क्रिया जैसे ही मिलाये व हाथों व पैरों से दबाया जाए। इस सम्पूर्ण उपचारित चारे को प्लास्टिक के मोटे मेणिये से अच्छी तरह ढ़क कर रखे ताकि इस

चारे में कही से भी हवा प्रवेश न हो। अच्छी तरह बंद करने के बाद मेणिये पर बड़े वजनदार पत्थर रखें।

- इस प्रकार का उपचारित चारा 21 दिनों तक ढ़क कर रखने के बाद पशुओं को खिलाने हेतु तैयार हो जाता है।

यूरिया उपचारित चारा कैसे खिलाये ?

यूरिया उपचारित चारा मोटे प्लास्टिक मेणिये को एक बाजु से दूर कर निकाल लेवे व मेणिये को फिर हवा चुस्त स्थिति में लावें।

- निकाले हुए चारें को बाहय वातावरण/ खुले में 20 – 25 मिनिट रखे जिससे उसमें अमोनिया की गंध/ भाप कम हो जाए।
- शुरूआत के 7 – 10 दिनों तक यूरिया उपचारित चारा कम प्रमाण में – गाय व भैंस को – 5 किलो प्रति पशु , भेंड़ व बकरियों को 0.5 किलो प्रति पशु के हिसाब से हरे व सुखे चारे के साथ खिलाये व धीरे – धीरे यूरिया उपचारित चारे की मात्रा बढ़ाए।
- इसे खिलाते समय पशु को पानी अधिक मात्रा मं पिलाए।

यूरिया उपचारित चारे से लाभ

- चारे की पौष्टिकता – पाच्य प्रोटीन के संदर्भ में बढ़ जाती है।
- पशु की भूख बढ़ती है व पूरे आहार की पाचकता बढ़ जाती है।
- पशु उत्पादन में बढ़ोतरी होती है जैसे बछड़े बछड़ियों का वृद्धि दर, दुधारू जानवरों का दुध उत्पादन, प्रजनन क्षमता सुधरती है।

सावधानियां

- यूरिया का घोल पशुओं के पहुँच से दूर रखें व इसे पशुओं को न खिलाये इससे पशुओं की मृत्यु हो सकती है।
- पशुओं को पहले 1 – 2 दिन आदत होने तक यूरिया उपचारित भूसा/ चारा कम मात्रा में खिलावे। जो प्रति दिन कुछ मात्रा में बढ़ावें। कम उम्र 6 मास के भीतर पशुओं को उपचारित चारा न देवे। व यह चारा केवल रोमंथक पशुओं को गाय– भैंस, बकरी व भेंड़ों को ही दें।

सम्पर्क सूत्र : **डा. ए. के. पटेल**

फायदेमंद पशु उत्पादन के लिए पशुपोषण बट्टिका

पशु पोषक बट्टिका क्यों : चरने वाले पशु – गाय भैंस, भेंड़ व बकरियों में – चरागाह से संम्पूर्ण पोषण न मिलने के कारण पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। जिसका प्रभाव गाय, भैंस तथा बकरियों में दूध की कमी, भेंड़ में – ऊन उत्पादन में कमी बछड़े, मेमणे में वृद्धि दर एवं इन सभी पशुओं में प्रजनन दर कम हो जाती है। जिससे पशु पालन व्यवसाय में नफा घटता है। पशु पोषक बट्टिका में शामिल पोषक तत्वों से पशु उत्पादन बढ़ता है।

पशु पोषक बट्टिका क्या है : पशु पोषक बट्टिका वह मिश्रण है जिसमें सभी पोषक तत्व सम्मिलीत है जैसे की ऊर्जा, प्रोटीन, लवणक्षार व विटामीन के स्त्रोत/पशु इन बट्टिका को चाटने से या कम प्रमाण में खाने से उन सभी पोषक तत्वों की पूर्णता कर लेता है जो उसके प्रतिशत में कम हो जाते है व इस वजह से पशु उत्पादन में सुधार आ जाता है।

बट्टिका बनाने में किन स्त्रोतों का उपयोग होता हैं : पोषण बट्टिका बनाने हेतु प्रचलित एवं अप्रचलित पशु खाद्यों का उपयोग लिया जाता है जैसे की :

- ऊर्जा स्त्रोत – अप्रचलित स्त्रोत जीरा या गुड़
- प्रोटीन स्त्रोत – अप्रचलित स्त्रोत – यूरिया व प्रचलित स्त्रोत – प्रदेश में उपलब्ध खल जैसे की मूंगफली/ कपास/सोयाबीन, रायेडा/ तुम्बे का खल या ग्वार की चूरी, भरडा
- रेषा के स्त्रोत – गेंहु की चापड, चावल का ब्रान
- विटामीन, क्षार मिश्रण व नमक
- बाइंडर जैसे – ग्वारगम पावडर, कोपर आक्साईड

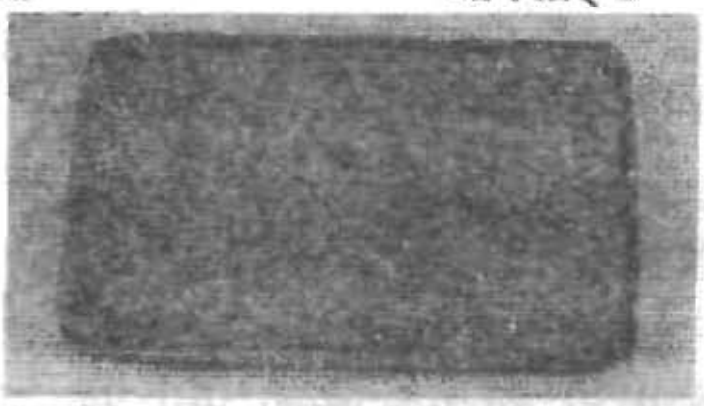

क्या बट्टिका स्वंय बना सकते है व उसकी विधि क्या हैं : पशु बट्टिका सरल तरिके से स्वयं बना सकते है जिसके लिए प्रदेश में उपलब्ध पशु आहार स्त्रोतों का चयन – गुणवत्ता व कीमत के आधार पर करना होता है व बट्टिका का उपयोग कौनसे पशुओं में किस उत्पादन हेतु करना है यह जानना जरूरी होता है व उस तरह से बट्टिका में विविध स्त्रोतों का प्रमाण निश्चित होता है। फोर्मुला या प्रमाण निश्चित होने के बाद बट्टिका बनाना एक सुलभ प्रक्रिया है जो नीचे दर्शाया हुआ है।

पोषक बट्टिका विधि

- यूरिया का कम से कम पानी में घोल बनाया जाता है जो सारे में निश्चित मात्रा में मिलाया जाता है।
- इस घोल में नमक, लवण मिश्रण डाल कर मिश्रण को अच्छी तरह मिलाते है।
- नं॰ 2 घोल में प्रोटीन स्त्रोत, (खस) रेषा स्त्रोत (चापड़) व बाइंडर को मिलाकर अच्छी तरह मिलाया जाता है जिससे की मिश्रण पूरी तरह समजीवी बनें।
- इस मिश्रण को घोल को बट्टिका बनाने हेतु लकड़ी या स्टील के मोल्ड में डालकर पैर से या दाब यंत्र द्वारा दबाते है व इन बट्टिका को धूप में या सोलर यंत्र के सहारे सुखाते है।

पशुओ को बट्टिका कैसे खिलाएं और इसका फायदे

अच्छी तरह सुखने के बाद बट्टिका पशु को खिलाने योग्य बना जाती है। पशु पोषक बट्टिका गाय, भैंस जैसे को चॉटनें के लिए दी जाती है इस लिए उसे पशु चारे को खेली में एक जगह रखा जाता है जहॉ पशु उसे सुविधानुसार चॉट पाये। बकरी व भेंड़ों के लिऐं भी पशु पोषक बट्टिकाऐ खेलियों में रखी जा सकती है जहॉ वह कुतर कुतर कर खाता है या पशु पोषण मिश्रण बट्टिका में परिवर्तीत न कर मिश्रण के रूप में निश्चित मात्रा में खिलाया जा सकता है।

गाय व भैंसों में – सामान्यतः 2 किलो की एक बट्टिका 8 से 10 दिनों तक पर्याप्त पोषण देती है। भेंड़ व बकरियों में दो रूपये किलो की एक बट्टिका प्रति पशु 22–25 दिनों तक पर्याप्त

पोषण हेतु उपयुक्त है। अथवा पोषण मिश्रण की मात्रा 80–100 ग्राम प्रति दिन प्रति पशु दी जा सकती है।

- गाय, भैंस व बकरियों को पोषक बट्टिका खिलाने से 15–25 प्रतिशत दूध उत्पादन में बढ़ोतरी देखी गई है।
- मांस उत्पादन हेतु पाले गए बकरों में 20–30 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है।
- प्रजनन जैसी समस्या – जैसे की

पशु पोषक बट्टिका मिलने का स्थान : कृषि तकनिकी सूचना केन्द्र, काजरी, जोधपुर

प्रति 2 किलो बट्टिका कीमत : रूपये 25/–

सम्पर्क सूत्र : **डा. एच.सी. बोहरा**

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका/ मिश्रण द्वारा पशुओ का संतुलित पोषण

पश्चिम राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में अकाल की परिस्थितियां लगभग नियमित अंतराल से होती है जिससे उत्पादन के साथ – साथ पशु व्यवस्था पर भी गहरा असर पड़ता है। अकाल समय में चारे के अभाव कारण पशु उत्पादन बाधित होता है तथा अकाल समयावधि बढ़ने से पशु स्वास्थ्य पर भी गहरा असर है। अकाल समय में पशुधन बचाने हेतु चारे की व्यवस्था देश के विभिन्न प्रातों से की जाती है जिसका खर्चा बहुत ज्यादा होता है इसलिए ऐसे समय में पशुधन व पशु उत्पादन सम्भालने हेतु सम्पूर्ण पशु आहार मिश्रण व बट्टिका का महत्व है।

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका/मिश्रण क्या है ? : सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका या मिश्रण एक सम्मिलित सम्पूर्ण आहार व्यवस्था है जिसमें घास चारो के साथ – साथ पौष्टिक/ संतुलित दाने का भी समावेश होता है। अकाल में पशुओं के निभाव में आवश्यक चारा व पशुखाद्य दोनों की कमी आती है व पशु स्वास्थ्य एवं पशु उत्पादन पर उसका खराब असर पड़ता। सम्पूर्ण पशु आहार में चारा व पशु दाने को स्त्रोतों को ऐसे प्रमाण में मिलाया जाता है ताकि पशुओं के निभाव व उत्पादन में आवश्यक पोषक तत्वों की जरूरत इस आहार द्वारा पूर्ण की जा सकें। सम्पूर्ण पशु आहार खिलाने पशु चराई के लिए बाहर भेजने की जरूरत नहीं होती है।

सम्पूर्ण पशु आहार में उपयोग में आने वाले स्त्रोत क्या है ? : सम्पूर्ण पशु आहार मिश्रण या बट्टिका में प्रचलित व अप्रचलित स्त्रोत उपयोग में लिए जाते है।

(1) चारे के स्त्रोत : प्रदेश में उपलब्ध घास, ज्वार, बाजरी की कुतर, सूखे हुऐ पेड़ के पत्तियॉ, मूंग, मोंठ ग्वार, मुंगफली का चारा।

(2) दाने के स्त्रोत : प्रचलित सभी धान्य वर्गीय अनाज, शीरा, गुड़

(3) प्रोटीन वर्गीय स्त्रोतों : सभी प्रकार की खल, मील जैसे मूंगफली/ कपास/ सोयाबीन/ रायडा/ तुम्बे/ तिल की खल/ ग्वार कोरमा/ मील व अप्रचलित स्त्रोत में यूरिया

(4) नमक, लवण मिश्रण व विटामीन मिश्रण।

(5) बाईंडर स्त्रोत जैसे ग्वार गम पावडर कोपर आक्साईड।

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका/मिश्रण बनाने की विधि : क्षेत्रीय परिस्थितिनुसार चारे के स्त्रोत का व पौष्टिक दाने में उपयुक्त स्त्रोतों का चयन किया जाता है व इस चयन प्रक्रिया में स्त्रोतो की गुणवत्ता एवं कीमत भी देखी जाती है जिससे पशु आहार सस्ता व उपयोगी साबित हो।

- चारे व पौष्टिक दाने का प्रमाण पशु आहार मिश्रण में आवश्यक पौष्टिक तत्वों की पूर्णता हेतु 40 : 60 से 70 : 30 प्रतिशत मात्रा तक तय की जाती है।
- पौष्टिक पशु दाना बनाने हेतु प्रचलित या अप्रचलित स्त्रोतों का प्रमाण निश्चित जाता है ।
- अप्रचलित स्त्रोत जैसे की यूरिया को कम से कम पानी में धोलकर वह घोल (मोलसिस) शीरे में मिलाया जाता है व इस घोल में नमक, लवण व विटामीन मिश्रण के साथ मिलाया जाता है। इस मिश्रण में खल, चुरी व रेषा के स्त्रोत – गेंहू की चापड़/ चावल के ब्रान के साथ मिश्रित किया जाता है।
- चारे की कुट्टी के साथ पौष्टिक दाना मिश्रण इस तरह मिलाया जाता है जिसमें पहले तय कि गए चारे व दाने की मात्रा/ प्रमाण सम्मिलित हो। इस मिश्रण में बट्टिका बनाते समय बाइंडर का भी प्रयोग किया जाता है ।
- यह मिश्रण 1 या 3 किलो तक दाब यंत्र में विशिष्ट दाब देकर दबाया जाता है जिससे आयात/ पौरस बट्टिका तैयार हो जाती है।

सम्पूर्ण पशु आहार मिश्रण/ बट्टिका किस तरह से खिलाई जाये ?

पशुओं के लिए यह बट्टिका एवं सम्पूर्ण आहार है इसलिए पशुओं को अलग से चारा या दाना देने की आवश्यकता नहीं है। पशुओं को खिलाने के लिए 2 – 3 किलो की बट्टिका हाथ से तोड़कर खेली में डाली जा सकती है व पशु कुछ दिनों की आदत से बड़े चाव से खाता है। गाय व भैंस के लिए 2 किलो वाली सम्पूर्ण आहार बट्टिका की आवश्यकता लगभग 5 से 7 की होती है व भेंड़ व बकरियों के लिए 1 से 1.5 बट्टिका पूर्ण दिवस के पोषण के लिए पर्याप्त है।

अकाल समय के चारा व दाना अभाव की परिस्थितियों के लिए क्या यह बट्टिका उपयुक्त है ?

अकाल समय की अभाव की परिस्थितियों के लिए ऐसी बट्टिकायें निश्चित रूप से बेहतर है व इसका भण्डारण कर सम्पूर्ण पशु आहार बैंक भी बनवाया जा सकता है। लगभग 1–1 वर्ष तक ऐसी बट्टियॉ संग्रहीत की जा सकती। है व चारे व दाने के अभाव से ग्रस्त पशुओं में संतुलित पोषण प्रदान कर सकती है।

क्या ऐसी बट्टिका उपलब्ध है ?

यह बट्टिका केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान के कृषि तकनिकी सूचना केन्द्र पर प्रति किलो रूपये 5.50 पर उपलब्ध है व यह पशु उत्पादन के लिए काफी फायदेमंद साबित हुआ है।

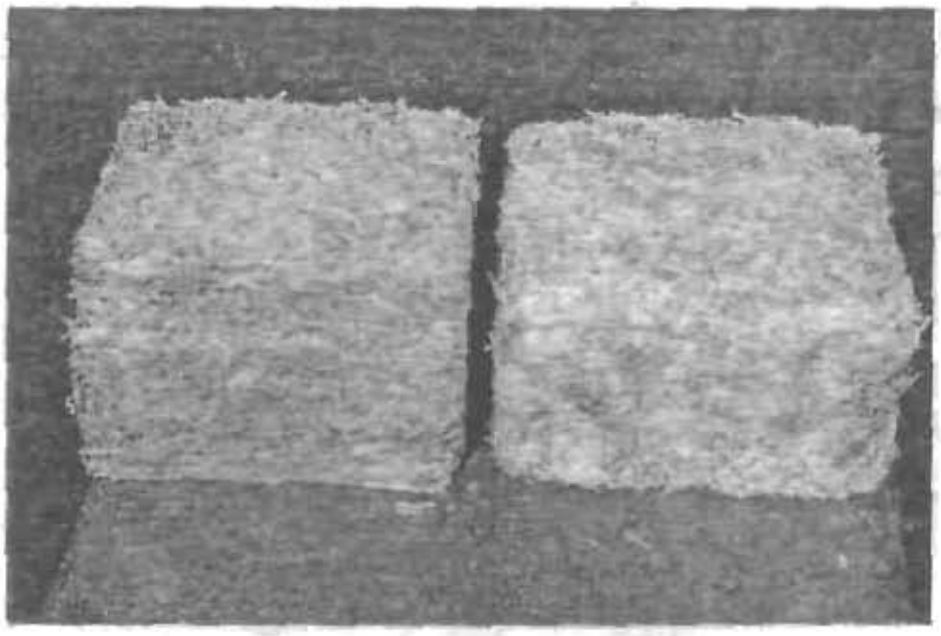

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका के फायदें

- दुधारू गायों में इसे खिलाने से प्रचलित आहार पद्धती की अपेक्षा प्रति किलो ग्राम दूध उत्पादन में होने वाले पोषण खर्च में लगभग रूपये 0.50 की कमी आती है। साथ ही इन गायों की प्रजनन क्षमता में सुधारनी है।बकरियों में भी दुध मात्रा में लगभग 25–30 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है।
- बकरी व भेंड़ों के बच्चों में वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी देखी गई लगभग 10–12 महिनों में 18–20 किलों वजन प्राप्त हो सकता है। बकरी के बच्चों में 2 मास बाद मॉ का दुध बन्द करने पर उनका पोषण सम्पूर्ण आहार बट्टिका पर पूर्ण रूप से किया जा सकता है व इस पद्धति द्वारा बकरिओं का दूध आय बढ़ाने हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।

क्या ऐसी बट्टिका/ मिश्रण बनाने हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था हैं ?

स्वयं रोजगार व्यवसाय हेतु प्रशिक्षण केन्द्रीय शुष्क अनसुंधान संस्थान, जोधपुर के पशु विज्ञान व चारा उत्पादन विभाग में उपलब्ध है।

सम्पर्क सूत्र : **डा. एन.वी. पाटिल**

मरू क्षेत्र में उन्नत पशु आवास व्यवस्था से पशुओं में अधिक उत्पादकता

प्रदेश के शुष्क क्षेत्र में पशुपालन छोटे, सीमांत एवं भूमिहीन किसानों के जीवनयापन का मुख्य साधन है। वैसे तो मरूक्षेत्र के पशुधन प्रजातियां इस क्षेत्र की विषम जलवायु के अनुिरूप ढली हो, परन्तु मौसम की प्रचण्डता की वजह से पशु भीषण गर्मी (40–45) व सर्दियों (2–6) के समय में पशु की उत्पादकता जैसे दुग्ध,ऊन व मांस उत्पादन आदि कम हो जाती है। प्रयोगों के आधार पर यह देखा गया है कि यदि मौसम की प्रचण्डता के दोरान पशुओं को उन्नत पशु आवास में रखा जावे तो पशु अपनी उत्पादकता बराबर बनाए रखता है।

मरूस्थल की जलवायु को देखते हुए संस्थान में एक "उन्नत पशुआवास" का विकास किया गया है। जिसके पशु गर्मी, सर्दीव वर्षा के मौसम की विषम परिस्थतियों में भी आराम से रहता है।

उन्नत पशु आवास की विशेषताऐं

- यह आवास पूर्व–पश्चिम दिशा आधारित होता है। आवास का आकार आयाताकार एवं छत झौंपड़ीनुमा होती है। आवास की लम्बाई 60 फुट, चौड़ाई 16 एंच एवं ऊॅचाई मध्यम से 10 फुट व किनारे से 7 फुट होती है।
- आवास का लम्बा हिस्सा दक्षिण की तरफं से खुला होता है। जिससे सर्दियों में पूरे दिन सूर्य की किरण व धूप आती है एवं गर्मीयों में इस ओर से हवा आती है।
- आवास की छत सीमेंट की चादरों से बनी होती है। ऊपर से आनेवाली गर्मी व ठण्ड को रोकने के लिए छत के नीचे 4 इंच मोटा धास–फूस का छप्पर लगाते हैं।
- आवास के अन्दर उत्तर की तरफ चारे–दाने के लिये एक विशेष प्रकार की खेली बनाई जाती है जिसमें पशु चारा आसानी से खा सके परन्तु उसमें कूद नहीं सके, जिससे चारे को खराब हाने से बचाया जा सके।
- आवास के चारो तरफ पर्याप्त मात्रा में खुली जगह हो जिसमें पशु अपनी इच्छानुसार व मौसम के अनुरूप विचरण कर सके।

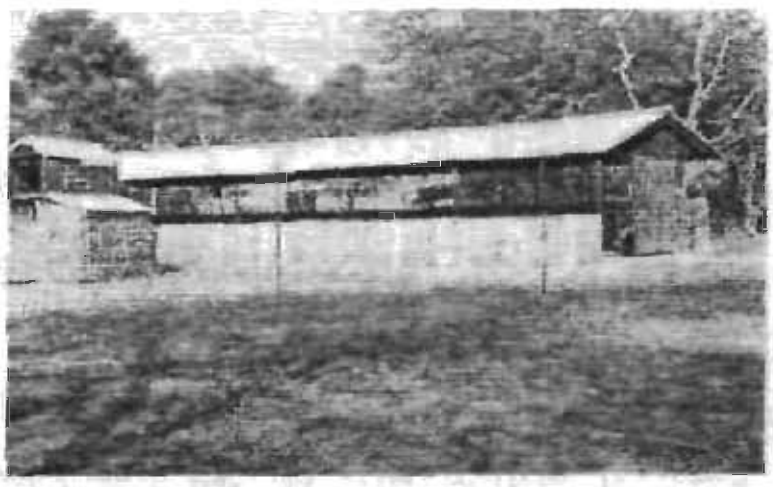

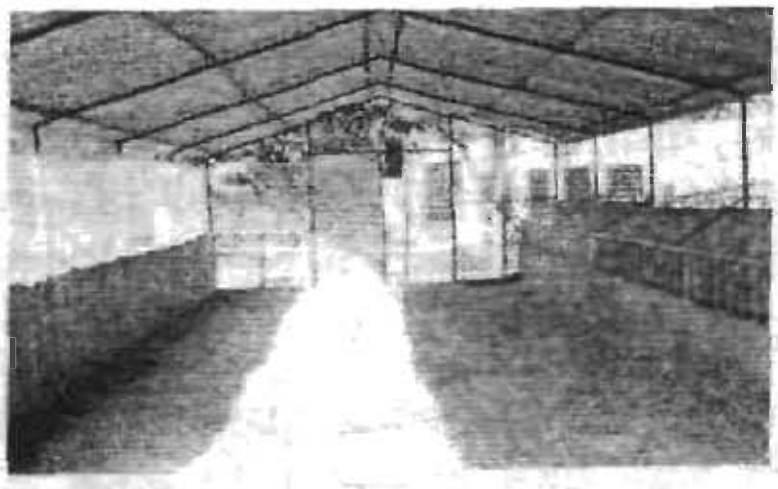

उन्नत पशु आवास के लाभ

- इस प्रकार के आवास में गर्मियों में अधिकतम तापमान बाहर की तुलना में 2–4^0 कम होता है व सर्दियों में ठण्डी हवाओं को अन्दर आने से रोका जाता है।
- प्रयोगों के आधार पर यह देखा गया है कि उक्त पशु आवास में रहने वाली बकरियों का कुल ब्यात का दुग्ध उत्पादन 22 प्रतिशत अधिक पाया गया है एवं बच्चों में बढ़वार 18 प्रतिशत अधिक पाई गई।
- इस तरह का आवास किसान व पशुपालक स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री से बना सकते हैं और अपने पशुओं को मौसम की प्रचण्डता से बचाकर अधिक उत्पादकता ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त पशुओं को अच्छे आवास में रखकर उनकी प्रजनन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है एवं नवजात बच्चों की मृत्यु दर कम की जा सकती है।

सम्पर्क सूत्र : **डा. ए. के. पटेल**

गाय एवं भैसों में बाझपन संबंधी समस्याओं का निराकरण

गाय एवं भैसों में बाझपन प्रजनन–संबंधी मुख्य बीमारी है। इसके कारण इन पशुओं में बॉझपन के अलावो होने वाले कुल दुग्ध उत्पादन पर भी विपरीत असर पड़ता है।

ध्यान रहें गाय का गर्भकाल लगभग 280 दिन एवं भैंस का लगभग 310 दिन का होता है अनुमानतः महीने की देरी से गर्मी में आने पर पशुपालक को लगभग एक हजार रूपये का आर्थिक नुकसान होता है। सामान्यतः ब्याने के बाद गाय व भैंस 2 महीने बाद वापस गर्मी में आनी चाहिऐ।

शुष्क क्षेत्र मे पशु गर्मी में न आने के मुख्य कारण

शुष्क क्षेत्रों में पशुओं के समय पर गर्मी में न आने के मुख्य कारण निम्न हैं:

1. **शारीरिक दुर्बलता** : जिसका मुख्य कारणं है क्षेत्र में पशुओं का असंतुलित पोषण एवं हरे चारे की कमी। इनके कारण प्रतिशत में निम्न कमियॉ आ जाती हैं :–

(क) प्रोटीन एवं ऊर्जा की कमी; (ख) विटामिन 'ए' की कमी; (ग) विशेष लवणों की कमी मुख्यतः फास्फोरस एवं अन्य सूक्ष्म लवण जैसे कोबाल्ट, मैगनीज, कॉपर, जिंक आदि। फास्फोरस की कमी अधिकतर कैल्शियम की कमी के साथ जुड़ी होती है।

2. **आन्तरिक एवं बाहरी परजीवियों का प्रकोप** : यह परजीवी खून एवं अन्य पोषक तत्व चूस कर पशुओं में उपरोक्त दुर्बलता लाने का कारण बन जाते है। साथ ही वह पशु की पाचन शक्ति भी बिगाड़ देते हैं ।

3. **जनन अंगों में विकार** : मुख्यतः अण्डाशय एवं गर्भाशय के रोग/विकार

4. **पशु गर्मी में होने की पहचान न हो पाना** : पशु का गुंगे पाले में आना। यह समस्या भैसों में विशेषतौर से गर्मी के मौसम में अधिक होती है।

बचाव उपाय

1. **पशु के जनन अंगों की जॉच करवाना** – समय पर गर्मी में न आने पर पशु को बीमार मानकर शीघ्र ही किसी योग्य पशु चिकित्सक द्वारा पशु के जनन अंगों की जॉच करवाये तथा ईलाज करवायें ।
2. **परजीवियों से मुक्तिः** किसी भी ईलाज आरम्भ होने से पूर्व आवश्यक है कि पहले पशु विभिन्न प्रकार के आन्तरिक एवं बाहरी परजीवियों से मुक्त हो जाये। आन्तरिक परजीवियों के निवारण हेतु पशु को फेनबेन्डेजोल, ऐलबन्डेजोल एवं ओक्सफेनडेजोल नामक परजीवीनाशक दवा का उपयोग वर्ष में 3 से 4 बार नियमित रूप से किया जाना चाहिये। बाहरी परजीवियों (जैसे जूं, चिचड़ी आदि) से बचाव हेतु बाजार में उपलबध साइपरमैथरिन नामक कीटनाशक दवा का पर स्प्रे (फुव्वारा) किया जा सकता है।
3. **नियमित संतुलित पोषण व्यवस्था करना**

   (क) इस हेतू पशुओं को 1–2 किलो संतुलित दाना (बाटा) मिश्रण आरम्भ से ही रखरखाव एवं विकास हेतु आवश्यक है। पशु के दूध देने या न देने से इस व्यवस्था का कोई संबंध नहीं है। दूध देने की स्थिति में पशु को इसके अतिरिक्त अधिक मात्रा (दुग्ध उत्पादन का 40 प्रतिशत लगभग) दाना देना होता है।

   (ख) शुष्क क्षेत्रों में जहॉ हरा चारा उपलब्ध नहीं है पशु को बाहर से विटामिन 'ए' देना सफल प्रजनन हेतु बहुत आवश्यक है। इस हेतु बॉझपन की स्थिति में पशु चिकित्सक की सलाह से 5–10 मिली. विटामिन 'ए' के इन्जेक्शन 2–3बार लगवाये जाने चाहिये।

   (ग) इसी प्रकार फास्फोरस नामक लवण की नियमित सप्लाई सफल प्रजनन हेतू आवश्यक है। इस हेतू बॉझपन की स्थिति में पशु चिकित्सक की सलाह से 5–10 मिली. इन्जेक्शन 2–3 बार लगवाये जाने चाहिये।

   (घ) लवण –मिश्रण बाजार में उपलब्ध है। आरम्भ से ही पशुओं को उनकी उम्र अनुसार 10 ग्राम से 30 ग्राम प्रतिदिन लवण –मिश्रण खिलाना चाहिये। बॉझपन के स्थिति में 30 ग्राम (एक मूट्ठी) लवण –मिश्रण पशुओं के दाने में मिलाकर अवश्य खिलायें।
4. **जनन अंगों में विकार/खराबी का ईलाजः** पशु चिकित्सक द्वारा जाच करवाकर सलाहानुसार अण्डाशय एवं गर्भाशय की बीमारियों का नियमित ईलाज करवायें । ईलाज पूरा करवाये उसे बीच में न छोड़े।

सफल प्रजनन कराने हेतु निम्न बातों का भी अवश्य ध्यान रखें

- गर्मी में आने के लक्षणों का पूरा ध्यान रखे तथा पशु का अच्छी नस्ल तथा स्वस्थ नर से ही प्रजनन करवायें। इस हेतु नर पशु का अलग से उचित रखरखाव आवश्यक है। उसे गांव में खुला न छोड़े अन्यथा उसकी प्रजनन शक्ति का नुकसान होता है। कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा उपलब्ध होने पर उसका उपयोग ज्यादा लाभकारी है।
- गर्भाधान कराने के 2–3 महीने बाद पशु वापिस गर्मी में न आने की स्थिति में, पशु की पशु–चिकित्सक द्वारा गर्भधारण जाच अवश्य करवा लेनी चाहिये।

अपने पशु का प्रजनन संबंधी रिकार्ड अवश्य रखें जिसमें उसके गर्मी में आने, प्रजनन, कराने आदि सभी तारीख का विवरण रखें। ऐसा करने से आपको समय पर गर्मी में न आने वाले/गर्भधारण नहीं होने वाले पशुओं की पहचान जल्दी हो सकती है।

सम्पर्क सूत्र : **डा. ए. सी. माथुर**

बकरी दूध उत्पाद से आमदनी बढ़ाये

मरूस्थलीय ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी पालन एक आर्थिक स्थिरता प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं। बकरी पालन मुख्यतः दूध व बकरे मांस उत्पादन हेतु किया जाता है।

बकरी दूध का महत्व

1. बकरी का दूध पौष्टिक एवं पाचक है। इसके दूध से बच्चों में एलर्जी की बीमारी नहीं होती है।
2. बकरी का दूध कार्बनिक प्रकृति का उत्पाद है इसमें किसी प्रकार के रसायन नहीं है।
3. बकरी के दूध में कम वसा (2.5 – 3.8 प्रतिशत) और अधिक लेक्टोज (28 – 36 प्रतिशत) पाया जाता है।
4. केल्शियम, पोटेशियम, लोहा, मेगनीशियम, फास्फोरस और तांबा जैसे धातु विटामिन–सी गाय के दूध की अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते है।
5. 100 – 150 मि॰ लि॰ बकरी का दूध एक बच्चे के लिए पूर्ण आहार है।

बकरी के दूध में पाई जाने वाली दुर्गन्धी के कारण इसके उत्पाद नहीं बन सकें। काजरी ने शोध एवं प्रयास से दूध की दुर्गंध को दूर करके इसका पनीर, कुल्फी, व्हे–पेय बनाया है।

कुल्फी बनाने की विधि : (1) बकरी के दूध को उबाल कर उसको गाढ़ा कर लें। (2) उबालते समय ही 70 ग्राम गाढ़े दूध में 5 ग्राम : शक्कर, 1 मिलीग्राम : केसर, 1 ग्राम : काजू, 3 ग्राम : पिस्ता और वनीला एसेन्स 0.3 मिली॰ डालें। (3) गाढ़ा किया हुआ 70 ग्राम दूध मिक्सचर कुल्फी के सॉचे में डालें और ठण्डा फ्रीज में 5 – 6 घंटे रखने पर कुल्फी तैयार हो जाती है। एक कुल्फी के बनाने की कीमत रूपये 2.50 आती है और बाजार में कम से कम रूपये 5.00 में एक बिक जाती है। अगर फ्रीज न हो तो एक मटके में नमक, कमली शोरा ओर थोड़ा बर्फ डाल दे और कुल्फी के सॉचे उसमें रख दें। तो भी 6 – 7 घण्टे में कुल्फी जम जाती है।

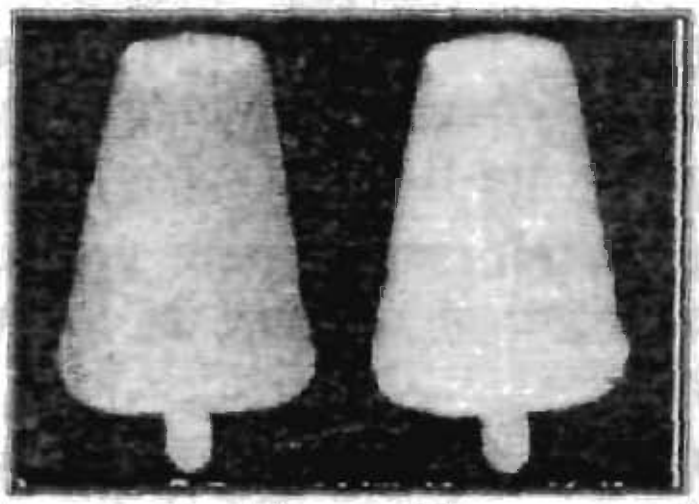

बकरी के दूध का पनीर : (1) दूध को धीरे – धीरे 88 – 90° सेन्टीग्रेड तक हिलाते हुये गर्म करें। (2) फिर उसमें साइट्रिक अम्ल 0.15 प्रतिशत की दर से मिलायें तथा दूध को हिलाते रहें। (3) जैसे ही हरे पीले रंग का व्हे पनीर छाछ दिखाई देने लगे, पनीर को मलमल कपड़े से छान लें। (4) उसके बाद पनीर को ठण्डे पानी में दो से तीन मिनट तक डुबा कर रखें। तत्पश्चात् पनीर को कपड़े में बाध लें ओर उसके ऊपर 5 किलो का वजन रख दें। 1 घण्टे में पनीर बन जायेगा।

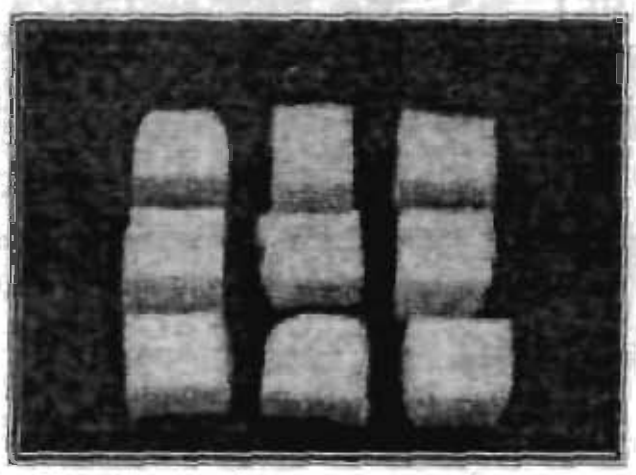

काजरी में पनीर रूपये 50/– प्रति किलो से बेचा जाता है।

पनीर छाछ (व्हे) –पेय

नमकीन स्वादिष्ट पनीर छाछ–पेय बनाने के लिए पनीर छाछ को 15 मिनट तक उबाल कर उसको मलमल के कपड़े से छानते है। इसमें फिर 4 ग्राम : काला नमक, 2 ग्राम : साधारण नकम, 25 मिली.: पोदीना का पानी ओर केवड़ा या खसखस और खाने के कलर डालकर पनीर छाछ–पेय तैयार किया जाता है।

इसमें प्रचुर मात्रा में लवण जैसे केल्शियम, आयरन, पोटेशियम, मेगनीशियम, फास्फोरस, कापर, कोबाल्ट, जिन्क और सेलीनियम तथा विटामिन "बी" काम्पलेकस है। इसलिए यह पेय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

सम्पर्क सूत्र : **डा. एम. एस. खान**

ग्वार पाठा से बने प्रोडक्ट्स

ग्वार पाठा एक बहुउपयोगी पौधा है। इसकी खेती के लिए राजस्थान का शुष्क एवं कठोर वातावरण उपयुक्त है। इससे निकलने वाले जेलीय पदार्थ कटे फटे त्वचा को सही करता है और घाव को भरता है। सही मात्रा में रोजाना उपयोग करने से कब्ज दूर करता है, बीपी को कन्ट्रोल करता है। इनके शुगर की बीमारी को भी कन्ट्रोल करता है। इनके उपयोग को देखते हुए काजरी में इसके जेल से कई उपयोगी प्रोडक्ट बनाए है जो निम्न लिखित है।

1. **एलो कोल्ड क्रीम** : फटे पैर, सूखे त्वचा के लिए बहुत ही लाभदायक है।
2. **ऐलो मोस्चाईजर** : यह तेलीय त्वचा के लिए उपयोगी हैं खासकर जाड़े में बहुत उपयोगी साबित होता है।
3. **ऐलो जेल** : गर्मी में इसका उपयोग त्वचा को सही बनाए रखने के लिए उपयोगी है।
4. **ऐलो केण्डी** : खाने योग्य बनाया गया प्रोडक्ट है। इसमें ग्वार पाठा के गुण मौजूद है।
5. **ऐलो जेली** : यह खाने योग्य बनाया गया प्रोडक्ट है।
6. **ऐलो पिक्ल** : इसमें ग्वार पाठा के गुण मौजूद है इसमें नमक कम है तथा पानी में तैयार किया गया है।

एलो कोल्ड क्रीम व ऐलो मोस्चाईजर काजरी के एटिक में उपलब्ध हैं।

सम्पर्क सूत्रः **डा. मो. मोहिब्बे आजम**

कूमट से अधिक मात्रा में गोंद उत्पादन

कूमट (अकेशिया सेनेगल), बहुमूल्य गोंद गम–अरेबिक का महत्वपूर्ण स्त्रोत है । हमारे देश में कूमट के पेड़ राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रेदश एवं हरियाणा के शुष्क क्षेत्रों में बहुतायत में पाये जाते हैं । परन्तु प्राकृतिक रुप से इन पेड़ों से गोंद बहुत कम मात्रा में ही प्राप्त होता है । जबकि सूडान इस गोंद का मुख्य निर्यातक देश है। कूमट से प्राप्त होने वाला यह गोंद औषधि उद्योगों के अतिरिक्त, कपड़ा, कागज, चर्वण, सौन्दर्य सामग्री, खाद्य पदार्थ इत्यादि उद्योगों में भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया जाता है। इसी कारंण विभिन्न उद्योगों में उपयोग के लिए प्रतिवर्ष इस गोंद का भारी मात्रा में आयात किया जाता है। यही कारण है कि कूमट के पेड़ों से अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त करने की दिशा में काजरी, जोधपुर में अनुसंधान किया गया है एवं कूमट से अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त करने की तकनीकी विकसित की गई है ।

इस तकनीकी में कूमट के पेड़ के तने में लगभग 1.5 से.मी. व्यास एवं 5 से.मी. गहराई का एक तिरछा छेद किया जाता है। इसमें निश्चित सांद्रता वाला गोंद उत्प्रेरक (इथोफोन) घोल डाल दिया जाता है तथा छेद को साफ की हुई चिकनी मिट्टी से बन्द कर दिया जाता है । इसके

पश्चात् वातावरण, मृदा स्थिति, एवं वृक्ष के सामान्य स्वास्थ के आधार पर कुछ ही दिनों में पेड़ के विभिन्न भागों से गोंद का रिसाव आरम्भ हो जाता है । लगभग एक माह बाद जब पेड़ पर निकला हुआ गोंद सूख जाता है तब उसे इकट्ठा कर लिया जाता है । प्रायः गोंद को दो से तीन बार इकट्ठा किया जा सकता है। उपचारित कूमट के पेड़ों से औसतन 500 ग्राम गोंद, प्रति पेड़, प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि किसी पेड़ से 1 किलो या उससे भी अधिक मात्रा में गोंद मिल सकता है परन्तु किसी पेड़ से बहतु कम 100 या 200 ग्राम या किसी पेड़ से कुछ भी नही । इस प्रकार से उपचारित पेड़ों से प्राप्त गोंद 'फार्मेकोपिया आफ इण्डिया' में वर्णित इण्यिन गम के भौतिक रसायनिक मापकों (फिजिको केमिकल स्पेसिफिकेशनस्) के अनुरुप पाया गया है ।

गोंद के लिए पेड़ों को उपचारित करने का उचित समय वह है जब पेड़ों से पत्तिया सूख कर गिर जायें और पेड़ ठूंठ की तरह दिखने लगे यह समय पश्चिमी राजस्थान में फरवरी के अन्तिम सप्ताह से मई के महीने तक हो सकता है । निश्चित सांद्रता का इथोफोन घोल काजरी, जोधपुर से 10 रुपये प्रति 4 मिली (एक पेड़ के उपचार हेतु) की दर से प्राप्त किया जा सकता है ।

यह तकनीकी किसान भाईयों में बहुत लोकप्रिय है इस तकनीकी के प्रचलन से किसानों में कूमट की पौध लगाने की मांग कई गुना बढ़ गई है जिससे न केवल किसान भाई स्वयं लाभान्वित हो रहे हैं अपितु मरुक्षेत्र का अधिक से अधिक इलाका वनस्पति की परिधि में आ रहा है।

राजस्थान सरकार द्वारा भी इस तकनीकी को किसानों द्वारा अपनाने के लिए समुचित प्रोत्साहन दिया जा रहा है ।

सम्पर्क सूत्रः **डा. एच. ए. खान**

पीलू का स्क्वेश एवं अन्य उत्पाद

सदैव हरा–भरा रहने वाला पीलू का वृक्ष मरुस्थलीय वनस्पति का एक मुख्य घटक है । इस वृक्ष को मीठा जाल के नाम से भी जाना जाता है । यह पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात के अनेक क्षेत्रों में बहुतायत में पाया जाता है । गर्मियों में जब तापमान अपनी चरम सीमा पर होता है तब ज़ाल का हरा–भरा वृक्ष बहुत सुहावना लगता है एवं विशेष रुप से ऊंट के लिए चारा उपलब्ध कराता है । इसी गर्मी के समय इस पर छोटे छोटे हल्के लाल एवं हल्के पीले रंग के फल आते हैं जिन्हें स्थानीय निवासी बड़े चाव से खाते हैं । ऐसी मान्यता है कि इसे खाने से लू का असर कम होता है । इन्हीं पीलू के फलों से केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में नया उत्पाद 'पीलू का स्क्वेश' तैयार किया गया है जो न केवल भीषण गर्मी में राहत देने वाला पाया गया है बल्कि एक महत्वपूर्ण नये व्यवसायिक उत्पाद के रुप में भी स्वागत योग्य है ।

पीलू के रसदार गूदे से 'पीलू जैम' भी बनाया गया है जो कि पीलू के फ्लेवर वाला एवं स्वादिष्ट होता है । बिना मौसम के पीलू का स्वाद लेने के लिए वैज्ञानिक विधि से सूखे पीलू भी तैयार किये गये हैं । व्यवसायिक दृष्टि से 'पीलू के स्कवाश' एवं अन्य उत्पादों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि बचे हुए पीलू के बीजों में 40 से 50 प्रतिशत अखाद्य वसा पाया जाता है जिसे विभिन्न उद्योगों में उपयोग किया जा सकता है । पीलू के बीज से प्राप्त वसा की रासायनिक संरचना नारियल के तेल से मिलती जुलती होने के कारण इसे अखाद्य उपयोग के लिए नारियल तेल का सुद्रढ़ विकल्प माना जाता है साबुन उद्योग इस वसा के उपयोग का सम्भावित क्षेत्र है, पीलू के वसा का उपयोग मोमबत्ती उद्योग में भी किया जा सकता है। मल्हम के आधार (बेस) के रुप में भी इस वसा का उपयोग हो सकता है । बीजों से वसा निकालने के पश्चात बची हुई खली में 29 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा पाई गई है अतः इस खली का उपयोग पशुआहार के रुप में किया जा सकता है । एक अनुमान के अनुसार, विभिन्न क्षेत्रों से पीलू के बीज की सम्भावित उपलब्धता 47,000 टन आंकी गई है।

अब तक व्यवसायिक दृष्टि से दूर रहे पीलू का सम्भावित व्यवसायिक उपयोग न केवल मरुस्थल के स्थानीय निवासियों के लिए रोजगार एवं आर्थिक सम्बल प्रदान करेगा बल्कि साथ ही आम जन को एक लाभप्रद प्राकृतिक पेय उपलब्ध कराने एवं इसके बीज के वसा से देश में अखाद्य तेलों की कमी को दूर करने में भी सहायक होगा ।

सम्पर्क सूत्रः **डा. एच. ए. खान**

निराई–गुड़ाई यन्त्र

निराई–गुड़ाई एक मुख्य कृषि कार्य है जो महिलाओं द्वारा किया जाता है। पारम्परिक कस्सी के भारी होने के कारण अधिक कर्षण बल की आवश्यकता होती है तथा जल्दी थकान महसूस होती है।

आवश्यकता

- निराई–गुड़ाई की क्षमता बढ़ाना।
- थकान एवं कर्षण बल कम करना।
- फिल्ड क्षमता (हेक्टेयर/घण्टा) बढ़ाना।

यन्त्रः निराई–गुड़ाई यन्त्र उच्च कार्बन स्टील की पत्ती से बनाया गया है। इसके मध्य में एक या दो ट्रेपजोइडल स्लाट बना देते हैं। इसको लकड़ी के हत्थे में फिट करते है।

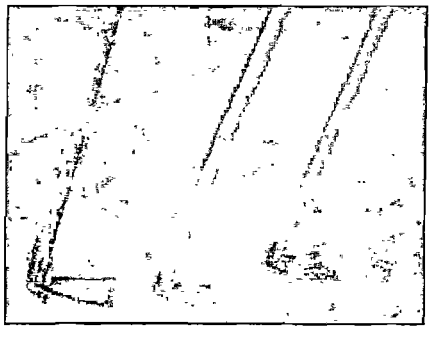

उन्नत निराई–गुड़ाई यंत्र

क्षेत्र क्षमता

1. पारम्परिक कस्सी – क्षमता 168 मी^{2}/घण्टा व कर्षण बल 8.5 किलो
2. सिंगल स्लाट कस्सी – क्षमता 162 मी^{2}/घण्टा व कर्षण बल 3.5 किलो
3. डबल स्लाट कस्सी – क्षमता 192 मी^{2}/घण्टा व कर्षण बल 5.7 किलो

लाभ

1. विशेष रूप से महिलाओं के लिये है।
2. उच्च क्षेत्र क्षमता (मी^{2}/घण्टा)
3. थकान कम होती है।
4. कम कर्षण बल की आवश्यकता

सम्पर्क सूत्रः **डा. हरपाल सिंह एवं डा. ए. के. सिंह**

सोलर प्रकाशवोल्टीय पम्प आधारित बूंद–बूंद सिंचाई से फलोद्यान का विकास

शुष्क क्षेत्रों की विकट परिस्थितियों के कारण यहाँ ऊर्जा के व्यवस्थित उपयोग का विशेष महत्व है। इन क्षेत्रों में जल विद्युत नहीं है, बिजली की उपलब्धता अनिश्चित है, दूर दराज के गाँवों में ईधन पहुँचाना कठिन है, डीजल की उपलब्धता भी सीमित है तथा उससे प्रदूषण भी होता है। कृषि मुख्यतः वर्षा पर आधारित है। हालांकि राजस्थान नहर के बनने से पानी की उपलब्धता बढ़ी है,

परन्तु उसका समुचित उपयोग न करने पर जल टिकाव तथा लवणीयता की समस्याऐं उत्पन्न हो जाती हैं जैसा कि नहर के प्रथम चरण के इलाकों में हुआ।

जल का किफायत से उपयोग तथा पारम्परिक सिंचाई के कारण होने वाली परे ाानियों से निपटने के लिये बूंद–बूंद सिंचाई की तकनीक़ को श्रेष्ठ माना जाता है। लेकिन इस प्रणाली को चलाने के लिये ऊर्जा की जरूरत होती है। बिजली की कमी या तेजी से खत्म होने वाले जैविक ईधन डीजल आदि उपलब्ध न होने के कारण किसान बूंद–बूंद प्रणाली को काम में नहीं ले सकते। इन बातों को ध्यान में रखकर काजरी, जोधपुर में सौर ऊर्जा चलित पम्प पर आधारित बूंद–बूंद सिंचाई की प्रणाली का विकास व परीक्षण किया गया है। इसकी संरचना में पानी व ऊर्जा की जरूरत और सूर्य में आने वाली ऊर्जा के मान में बदलाव के साथ पानी के दबाव में आये परिवर्तन को ध्यान में रखा गया तथा ऐसे ड्रिपर्स का चयन किया गया कि सभी जगह समान मात्रा में पानी पहुँचें। सौर पम्प से चलने वाले इन ड्रिपर्स की कार्य क्षमता का परीक्षण करने पर पाया गया कि प्रातः 9 से सांय 5 बजे तक दबाव में 60 से 100 केपीए परिवर्तन होने पर भी 92 से 96 प्रति शत उत्सर्जन क्षमता के साथ 3.4 से 3.8 लीटर/घंटा की दर से पानी उपलब्ध कराते हैं ।

सोलर जनरेटर

इस प्रणाली का एक हेक्टेयर के लिये सफलता पूर्वक परीक्षण किया गया तथा यह निष्कर्ष निकाला गया कि यह सिस्टम 4 से 5 हेक्टेयर बगीचे को एक दिन में सिंचित कर सकता है। मंहगे फोटोवोल्टाइक सेल प्रयुक्त करने के बावजूद अनार उत्पादन के लिये लाभ व कीमत का अनुपात 2 आता है। भविष्य में सस्ते पतली परत वाले सोलर सेल की मदद से यह प्रणाली किसानों के लिये अत्यन्त लाभप्रद साबित होगी। चूंकि सोलर सैल से बनने वाली बिजली मंहगी है तथा बगीचे में पानी की लगातार जरूरत भी नहीं होती है, इस प्रणाली को और भी बड़े रूप से काम में लिया जा सकता है। इस फोटो वोल्टाइक प्रणाली को कुछ और उपकरण जैसे डीसी–डीसी कनवर्टर, संग्रहक बैटरियां तथा इनवर्टर आदि जोड़कर एक प्रत्यावर्ती धारा का उत्पादन करने वाला जनरेटर बनाया गया है जो फसल कटाई के बाद किये जाने वाले कृषि कार्यों में मददगार छोटी मशीनों को चला सके। इस प्रकार सौर पम्प की उपयोगिता और बढ़ जाती है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. पी. सी. पांडे**

पशु आहार–सौर चूल्हा

गावों में पशु आहार को उबालने के लिये लकड़ी एवं गोबर के उपलो का प्रयोग किया जाता है। उपलब्ध सौर चूल्हों की कीमत अधिक है तथा सिर्फ दिन भर में 2 किलों पशु आहार ही

उबाल सकते है। जबकि किसान करीब 10 किलों पशु आहार प्रतिदिन उबालते है। इसको देखते हुए बहुत ही कम कीमत का पशु आहार पकने का सौर चूल्हा केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में विकसित किया गया है। इसमें दिन भर में 10 किलो पशु आहार तैयार कर सकते हैं।

यह चूल्हा काली मिट्टी, बाजरे का डूरा व गोबर के मिश्रण से बनया गया है। इसमें सिर्फ कांच व उसका फ्रेम जोकि ऊपर से लगाया गया है तथा निचली सतह में लोहे की सफेद चद्दर व पशु आहार पकाने के लिए एल्युमिनियम की तगारियों को बाजार से खरीदना पड़ताहै। इसे कोई भी अप्रशिक्षित आदमी या औरत बना सकते हैं। इसमें बाजरे का डूरा कुचालक के रूप में प्रयोग किया गया है। अतः इसकी कीमत कम है। इसमें प्रातः काल में पशु आहार को पानी में मिलाकर एल्युमिनियम की चार तगारियों में रखकर चल्हें के अन्दर रख देते हैं। प्रातः प्रत्येक तगारी में 2.5 किलो सूखा पशु आहार आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर रख देते है। दिन में करीब 3.00 बजे तक पशु आहार तैयार हो जाता है। इसके बाद कभी भी इसे जानवरों को खिला सकते है। इस चूल्हें के प्रयोग से प्रतिवर्ष करीब 1000 किलो लकड़ी बचा सकते है। सौर चूल्हें की कीमत करीब 2500/– रूपये है। मिट्टी के सौर चूल्हें को समयानुसार मिट्टी का लेप करने की आवश्यकता रहती है। इस रख रखाव से बचने के लिये मिट्टी की जगह पत्थर सीमेन्ट का भी बनाया जा सकता है। उसकी कीमत करीब 3500/– रूपये आती है।

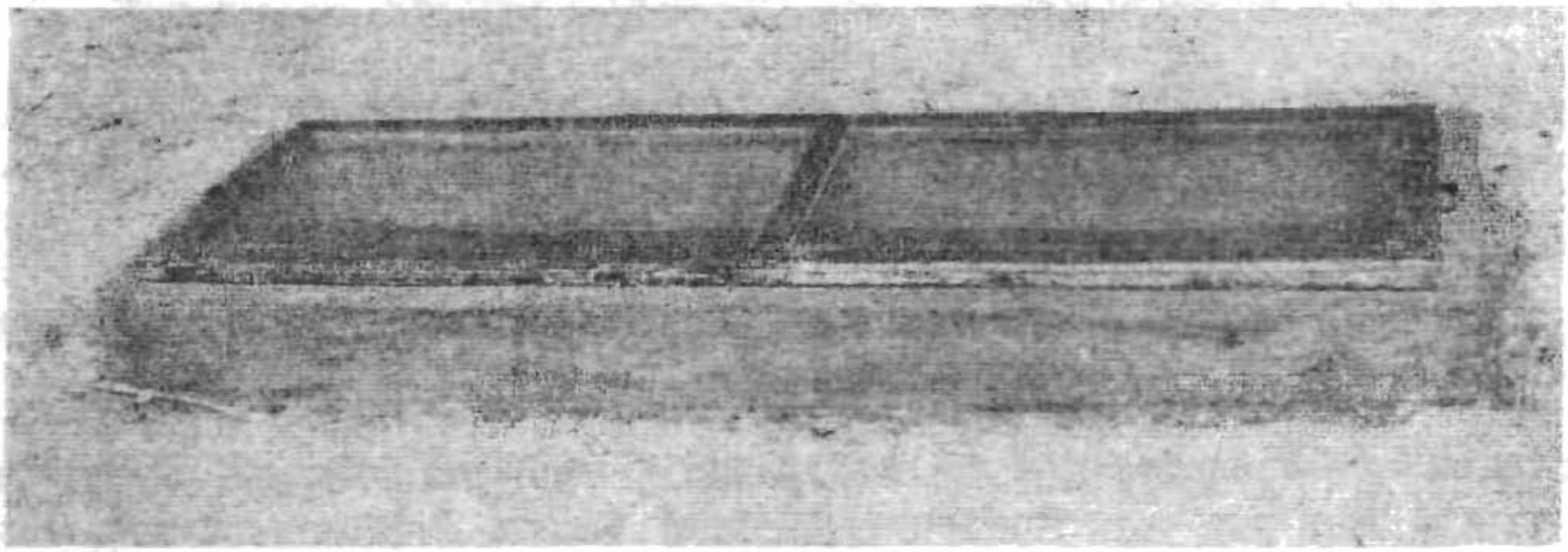

सौर चूल्हा

सम्पर्क सूत्रः **डा. एन. एम. नाहर**

सौर शुष्कक

थार रेगिस्तान फल व सब्जियॉ सुखाने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। यहां की जलवायु शुष्क व गर्म है तथा बंजर जमीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सूर्य के प्रकाश से खुले मैदान में फलों व सब्जियॉ सुखाने की विधि दीर्घकाल से प्रचलित है यह विधि ठीक नही है क्योंकि इस विधि से उपज में धूल गिरती है। कीड़े लग जाते है तथा उत्पाद वर्षा से नष्ट हो जाते है। इस प्रकार खुली घूप में सब्जियों को सुखाने से काफी नुकसान हो जाता है । इस नुकसान से बचने के लिये केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में 100 किलो ग्राम क्षमता का एक सौर शुष्कक बनाया गया है। इस सयन्त्र में 10 सौर शुष्कक एक श्रेणी में जुड़े है तथा प्रत्येक शुष्कक सफेद लोहे की चद्दर व लोहे के एंगलो से बना सन्दूक के आकार का बक्सा होता है। जिसमें ऊपरी सिरे पर एक पारदर्शी कांच लगा होता है। इस सौर शुष्कक में विभिन्न प्रकार की सब्जियों को सुखाया गया है। इनमें मुख्यतः पालक, धनिया, पोदीना, मैथी, बथुआ, भिन्डी, गोभी, ग्वार–फली, प्याज, लहसुन, हरी व लाल मिर्च, मटर, चुकुन्दर, अरबी, हल्दी, मूली, गाजर, इमली, काचरा, बेर, खजूर, अंगूर इत्यादि 2 से

4 दिन में सुखाई गई है। हरी सब्जियों का रंग हरा ही रहता है। सूखी सब्जियों को गर्म पानी में भिगोने से उनका आकार वापस ताजी सब्जी के बराबर हो जाता है तथा बाद में सब्जी बना सकते है। किसान जब सब्जियॉ अधिक सस्ती हो उस समय सुखाकर बाद में अधिक कीमत पर बेच सकते हैं। एक सौर शुष्कक जिसकी क्षमता 10 कि.ग्रा. की कीमत करीब रूपये 4000/– है इस तरह पूरी इकाई जिसमें 10 सौर शुष्कक लगते है कीमत करीब रूपये 40000/– है।

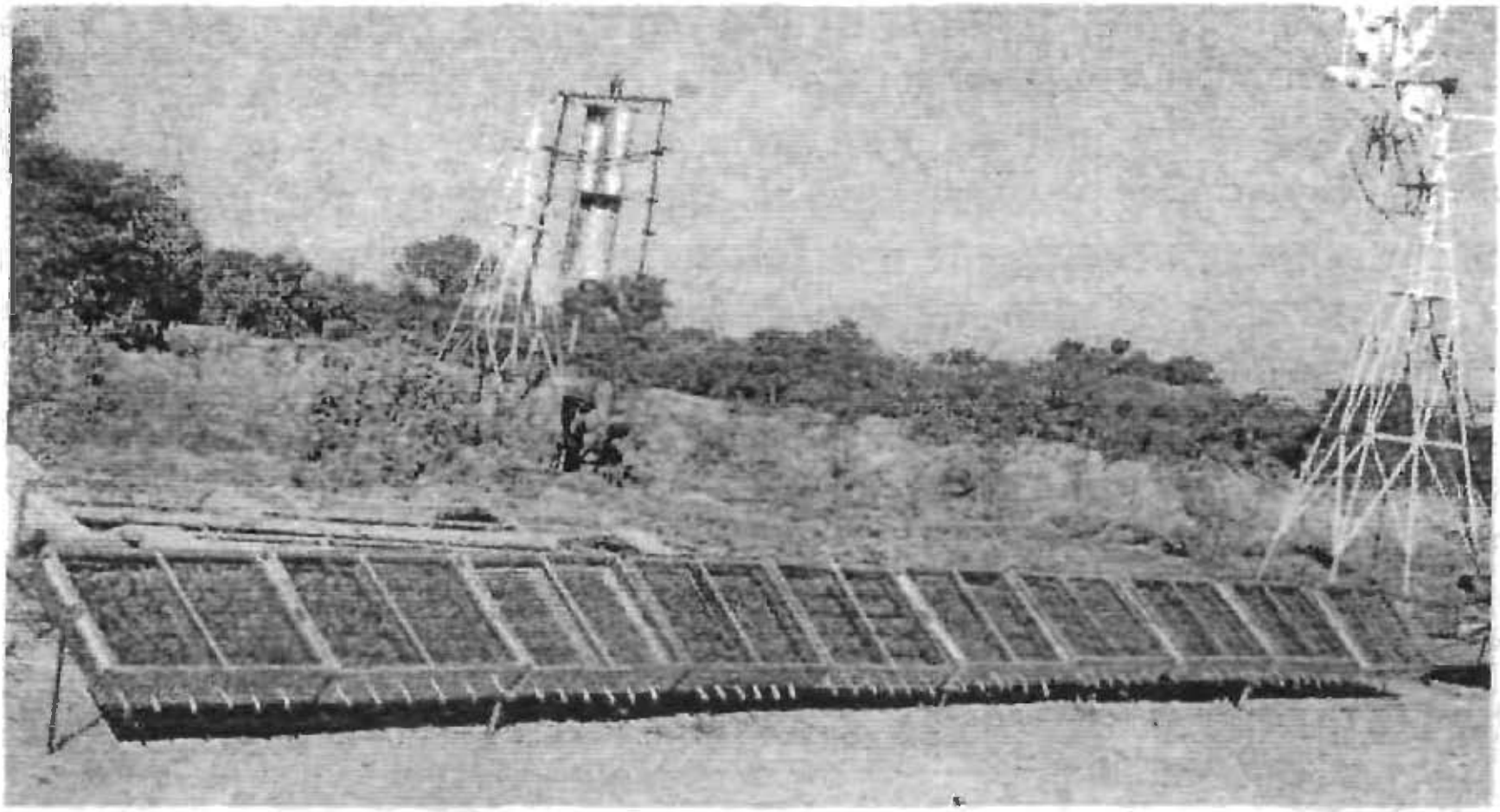

सौर शुष्कक

सम्पर्क सूत्रः **डा. एन, एम. नाहर**

सोलर फोटोवोल्टाइक डस्टर

आवश्यकता : फसलों को रोगों द्वारा होने वाले नुकसान से बचाने तथा हानिकारक कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये प्रायः रासायनिक कीटनाशक पदार्थो मिथाइल पैराथियोन, बी.एच.सी., गंधक पाउडर आदि का छिड़काव किया जाता है। यह कार्य हाथ से या भारी भरकम डस्टर की मदद से या डीजल चालित मशीनों से किया जाता है, जो असुविधाजनक है। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए काजरी में एक ऐसे हल्के व बहुउपयोगी सोलर फोटोवोल्टाईक (पीवी) किटनाशक छिड़काव यंत्र (डस्टर) का विकास किया गया है जो कीटनाशक छिड़काव के अलावा दूर ग्रामीण क्षेत्रों में रात को रोशनी करने के लिये भी काम में लिया जा सकता है।

संरचना : इस सोलर फोटोवोल्टाईक (पीवी) सैल चलित डस्टर के प्रमुख भाग हैं फ्रेम में लगा सोलर पीवी पैनल, संग्राहक बैटरी तथा विशेष प्रकार से बनाया गया छिड़काव यंत्र। हल्के फ्रेम में सोलर पी.वी. पैनल इस प्रकार लगाया गया है कि वह छिड़काव करने वाले को छाया देता रहे तथा यंत्र को चलाने के लिये बिजली भी मिलती रहे। पैनल कैरियर के पीछे बने एक खाने में बैटरी रखी रहती है। डस्टर के तीन प्रमुख भाग है : सबसे ऊपरी भाग हापर में पाउडर भरा रहता है तथा एक एजिटेटर लगा रहता है, मध्य भाग में हवा अन्दर जाने के लिये छिद्र और इम्पेलर की तरफ जाने वाले पाउडर को नियंत्रित करने का प्रावधान है, नीचे के भाग में डी.सी. मोटर से जुड़ा इम्पेलर डिस्क तथा पाउडर बाहर जाने के लिये एक निकास पाइप लगा होता है। ऊपर के भाग में छिद्र युक्त दो वृत्ताकार समकेन्द्री प्लेटें लगाई गई है जिनकी मदद से पाउडर के छिड़काव की मात्रा नियंत्रित की जा सकती है।

काजरी में विकसित सोलर फोटोवोल्टाइक डस्टर

उपकरण की विशेषताएँ :

- प्रकृति में मुफ्त सौर ऊर्जा का दोहन
- 7.5 पीक वॉट पीवी पैनल
- छिड़काव करने वाले को छाया
- रखरखाव रहित बैटरी
- विशेष प्रकार से निर्मित डस्टर एवं यूएलवी स्प्रेयर को चलाने में सक्षम
- क्षमता 0.7 हे./घं ; वजन 6.5 कि.ग्रा
- कीमत 3000 रूपये
- कीड़ों द्वारा उत्पन्न रोगों की रोकथाम
- रोशनी करने के लिये उपयोगी

कार्यप्रणाली : उपकरण (डस्टर) को चलाने पर एजिटेटर पाउडर को छिद्रदार प्लेट से नीचे गिराता है, जिसे तेजी से घूम रहा इम्पेलर हवा के साथ नीचे खीच लेता है तथा निकासी पाइप से बाहर की तरफ फेंक देता है। यह डस्टर लकड़ी के हैंडिल पर लोहे की पत्तियों की सहायता से लगाया हुआ होने से प्रयोग में लाते समय बहुत सुविधाजनक है। इस हैंडिल पर लगे एक स्विच की मदद से डस्टर को चलाया व बन्द किया जा सकता है। इसी पी.वी. पैनल के द्वारा यूएलवी स्प्रेयर भी चलाया जा सकता है जो द्रव्य कीटनाशक दवाईयों को छिड़कने के लिये उपयुक्त है।

उपयोगिता एवं कीमत : कीटनाशक दवाईयों को छिड़कने के अलावा इस यंत्र द्वारा इलैक्ट्रॉनिक्स इकाइयों की सहायता से काम्पेक्ट फ्लोरीस्सेंट लैम्प को जलाकर रोशनी भी की जा सकती है। अतः यह उपकरण पूरे साल घर में रोशनी करने तथा जब जरूरत हो डस्टर या स्प्रेयर के रूप में काम में लिया जा सकता है। इस सोलर पीवी डस्टर की कीमत लगभग 3000 रूपये है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. पी. सी. पांडे**

सोलर फोटोवोल्टाइक विनोवर मय शुष्कक

सोलर फोटोवोल्टाइक (पीवी) विनोवर कुटी हुई फसल के भूसे में से अनाज, मसाले इत्यादि के दाने आसानी से अलग करने का यंत्र है। फसल कटाई के बाद हवा न चलने की स्थिति में यह यंत्र बहुत उपयोगी है। इसे और उपयोगी बनाकर पूरे साल काम में लेने के उद्देश्य से एक इससे जुड़ने वाला फल व सब्जी सुखाने वाला यंत्र बनाया गया है। इस प्रणाली के प्रमुख अंग है दर्पण परावर्तक युक्त फोटो वोल्टाइक मोड्यूल, विशेष प्रकार से बना विनोवर तथा सुखाने वाला कक्ष।

विनोवर

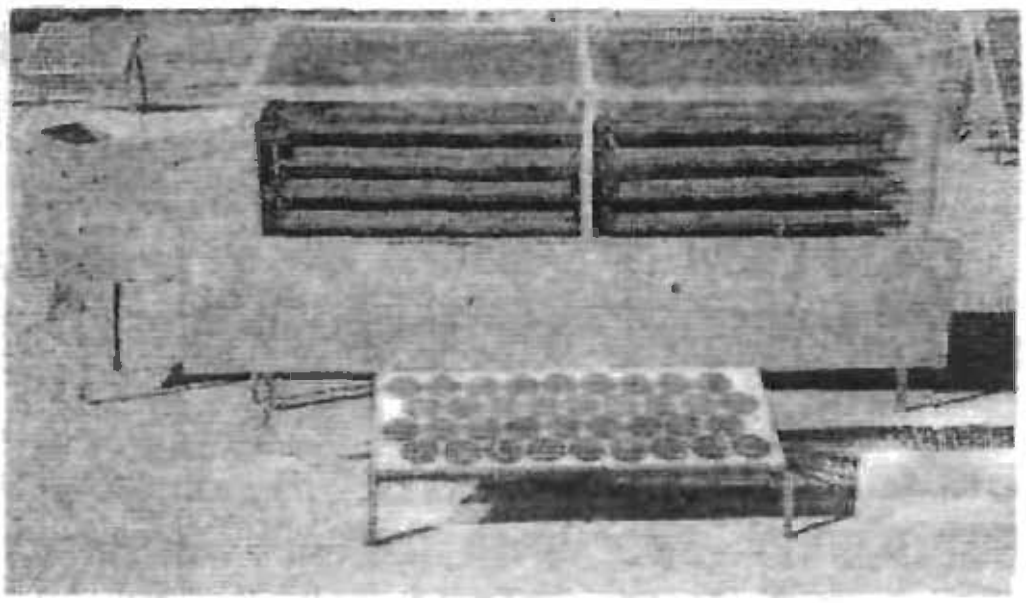

शुष्कक

विनोवर से 1 से 1.5 घण्टे में 35 से 50 किग्रा धान को इससे दुगने या तिगुने भूसे से अलग किया जा सकता है। सोलर पीवी ड्रायर की मदद से दिन में विनोवर के पंखे की हवा चलाकर तथा रात में हवा के प्राकृतिक बहाव से तरबूज की फाके, काचरा, कसी हुई गाजर, केर, धनिया पत्ते, मिर्च इत्यादि को खुली धूप की अपेक्षा आधे से कम समय में ही सुखाया जा सकता है तथा इनका रंग व खुशबू भी बरकरार रहती है। धूप तेज होने के साथ ही साथ पंखे की गति भी बढ़ती रहती है, इस कारण से सुखाने वाले कक्ष के अन्दर का तापमान नियन्त्रित ही रहता है।

पीवी पेनल से ज्यादा बनी बिजली को एक बैटरी में संग्रहीत करने का प्रावधान भी कर लिया गया है, जिसमें ब्लाकिंग डायोड व बैटरी के ज्यादा चार्ज होने से बचाव की व्यवस्था भी है इस प्रकार यह उपकरण रोशनी करने में प्रयुक्त किया जा सकता है और यह संयत्र घर में रोशनी करने, धान की सफाई करने व फसल के भूसे से धान प्राप्त करने तथा सब्जी व फल सुखाने आदि कार्यो में वर्ष भर प्रयुक्त किया जा सकता है जिससे किसान को ज्यादा फायदा हो सकता है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. पी. सी. पांडे**

सौर ऊर्जा से मोमबत्ती

मोमबत्ती बनाने के लिये परम्परागत ईधंन काम में लाये जाते हैं जैसे मिट्टी का तेल, कोयला, लकड़ी, बिजली, इत्यादि। संस्थान ने सौर ऊर्जा आधारित मोमबत्ती संयंत्र बनाया है। यह सयंत्र सूर्य की गर्मी को एकत्रित कर मोम को पिघला देता है। पिघले मोम को फिर इच्छानुसार सांचों में भर कर विभिन्न आकार की मोमबत्तियाँ बना ली जाती हैं।

कार्य प्रणाली : सौर सयंत्र के उपयोग से साधारण व्यक्ति थोड़े प्रशिक्षण से आसानी से मोमबत्ती बना सकता है। इसमें दिन में कभी भी एक बार सुबह या शाम को मोम भरा जा सकता है। शाम को मोम भरना और मोमबत्ती बनाना ज्यादा सुविधाजनक है। ठोस मोम (पट्टी के आकार में) ठोस मोम को तोड़ कर छोटे–छोटे टुकड़े इस सौर सयंत्र में भरे जाते हैं। एक छोटे सौर सयंत्र (अवशोषित क्षेत्रफल 0.48 वर्ग मीटर) में लगभग 12–14 किलोग्राम मोम भरा जा सकता है। मोमबत्तियाँ बनाने के लिये शाम को लगभग दो घण्टे का समय काफी होता है।

मोम सूर्य की गर्मी में पिघल जाता है। सौर संयंत्र में मोम पिघलते समय किसी भी प्रकार की देखरेख की जरूरत नहीं पड़ती। व्यक्ति अपने दैनिक नित्यकर्म में बिना बाधा पहुंचाये मोमबत्ती का सुगमता से उत्पादन कर सकता है। सौर संयंत्र से पिघला हुआ मोम निकालने के बाद उसी वक्त ठोस मोम फिर भर दिया जाता है। यह मोम अगले दिन सूर्य की गर्मी से पिघलता है। इस मोमबत्ती बनाने की प्रकिया को पुनः दोहराया जाता है और मोमबत्तियों का उत्पादन किया जा सकता है।

सौर संयंत्र के फायदे : परम्परागत तरीके से मोमबत्ती बनाने की तुलना में इस नई विधि से मोमबत्ती बनाने के अनेकों लाभ हैं।

1. नई विधि सरल एवं प्रदूशण रहित है तथा स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं है।
2. ईधन व श्रम की बचत होती है।
3. मोम को पिघलते वक्त देखरेख की जरूरत नहीं होती। इसके अलावा धुआँ आदि न होने के कारण आस पास का वातावरण भी प्रदूशित नही होता।
4. वाष्पीकरण से होने वाले मोम के नुकसान व रखरखाव के खर्चे में कमी से मोमबत्ती बनाने की लागत कम आती है।

उत्पादन क्षमता : नई विधि से मोमबत्ती उत्पादित करने की क्षमता मौसम और धूप की तेजी पर निर्भर करती है। छोटे सयंत्र (अवशोषित क्षेत्रफल 0.48 वर्ग मीटर) की क्षमता 10–14 किलोग्राम है। सर्दी के दिनों में इस संयंत्र से 6–9 किलोग्राम तक मोम बत्तियों का उत्पादन किया जा सकता है

जब कि गर्मियों में 9–16 किलोग्राम तक मोमबत्तीयॉ बनायी जा सकती हैं। इस संयंत्र की कीमत सांचों सहित) लगभग 4600 रूपये है।

सम्पर्क सूत्रः **डा. पी. बी. एल. चौरसिया**

ढ़ींगरी खुम्बी

उत्पादन विधि

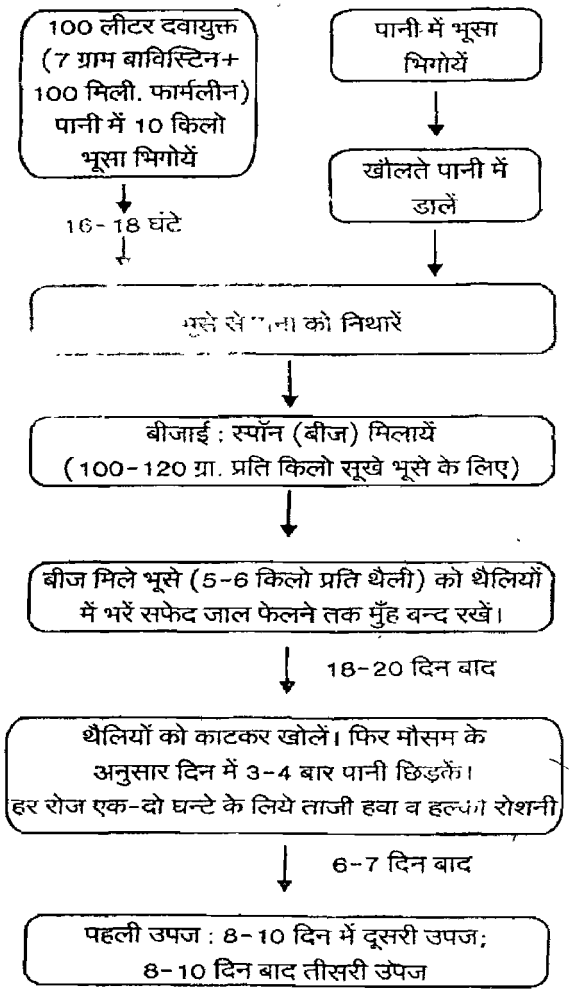

सावधानियाँ

- काम में लेने वाला भूसा, भिगा हुआ, काला व पुराना नहीं होना चाहिए।
- पॉलीथीन थैली को खुम्बी उगाने से पहले 2 प्रतिशत फार्मलीन के घोल से साफ करके सुखा लेना चाहिएं
- बीज मिलाने की जगह पर स्वच्छ पॉलीथीन शीट बिछायें या फार्मलीन से धुले फर्श पर बीज मिलायें।

- बीज मान्यता प्राप्त प्रयोगशाला से लेवें। बीज खरीद कर लाते समय इसे धूप व मिट्टी से बचायें और उपयोग करने से पहले नहीं डालें। भण्डारण के लिए बीज ठंडे स्थान पर रखें।
- जिस कमरे में खुम्बी उगाना है उसके फर्श व दीवारों पर काश्त से 24 घंटे पहले 2 प्रतिशत फार्मलीन छिड़कें
- खुम्बी की डण्डिया लम्बी होने की स्थिति में ताजी हवा व हल्की रोशनी का समय बढ़ावें।
- मशरूम गृह में सफाई रखें और दरवाजे पर फार्मलीन युक्त पायदान रखें।
- मक्खियों एवं कीटों से बचाने के लिए जालीदार दरवाजे का प्रयोग करें।
- मशरूम को सीधा धुमाकर तोड़ें।
- चूहों से बचाकर रखें।

सुखाने की विधि

- मशरूम अगर ताजे न बेचने हो तो इन्हें धूप में सुखाकर रखा जा सकता है। मशरूम तोड़ने के पश्चात् 4–5 घंटे इनको फैलाकर छाया में और तीन चार दिन धूप में सुखायें।
- 1 किलों खुम्बी सूखने के बाद लगभग 100 ग्राम रह जाती हैं। सुखाते समय धूल व मिट्टी से बचाये।
- 60–70 डिग्री से. ग्रेड़ से ज्यादा तापमान पर सुखाने से गुणवत्ता प्रभावित।

व्यंजन

- मशरूम
- मशरूम ब्रियानी
- मशरूम पनीर
- मशरूम मटर
- मशरूम मिर्ची बड़ा
- मशरूम पकोड़ा
- मशरूम मिश्रित सब्जी
- मशरूम भजिया
- मशरूम सलाद
- मशरूम बर्गर
- मशरूम मिश्रित अचार

मशरूम बीज की उपलब्धता :

- एटिक, काजरी, जोधपुर
- राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर।
- पौध व्याधि प्रयोगशाला, कृषि विभाग, दुर्गापुरा, जयपुर।

सम्पर्क सूत्रः **डॉ. एस.के. सिंह**

कृषि प्रसार एवं प्रशिक्षण

काजरी की उन्नत तकनीकियों के प्रसार हेतु वर्तमान में गाँव दांतीवाड़ा को गोद लिया गया है जिसमें काजरी द्वारा विकसित बाजरी की किस्म सी.जेड. पी. 9802, एवं उसमें एकीकृत पोषक प्रबन्धन, खरीफ फसलों में चूहा नियंत्रण, मरू सेना द्वारा मोंठ एवं ग्वार को उपचारित करके बोना, पशु पोष्टिक द्वारा पशुओं में दुग्ध उत्पाद बढ़ाना एवं कम्पोस्ट बनाना आदि को प्रदर्शित किया गया है एवं इन पर प्रशिक्षण भी आयोजित किये। बाजरा की उन्नत किस्म सी.जेड़.पी. 9802 के प्रयोग से 631 कि.ग्रा. उपज प्राप्त हुई जबकि स्थानीय किस्म से केवल 460 कि.ग्रा. उपज प्राप्त हुई। उन्नत किस्म सी.जेड़.पी. 9802 में एकीकृत पोषक प्रबन्धन द्वारा उपज में 45.08 प्रतिश्वत की वृद्धि हुई। जबकि स्थानीय किस्म में एकीकृत पोषक प्रबन्धन द्वारा 37.17 प्रतिश्वत की वृद्धि हुई।

बाजरा एवं ग्वार की फसल में चूहा नाशी विषचूगे के प्रयोग किये गयें। बाजरा की फसल में 4 चूहा नाशी जिंक फासफाइड, ब्रोमेडाइओलोन, जिंक फासफाइड+ब्रोमेडायोलोन एवं अनुपचारित के 4 उपचार लिये गये। चूहा नाशी के प्रयोग से बाजरा की उपज में 36 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि

ग्वार की फसल में एक चूहा नाशी जिंक फासफाइड के प्रयोग से उपज में 14 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

मरू सेना से ग्वार की उन्नत किस्मों को बीज उपचारित करके बोने से ग्वार में फाल अधिक आया, बीमारी कम लगी एवं 12 से 18 प्रतिश्वत की उपज में बढ़ोत्तरी हुई अपेक्षाकृत बिना उपचारित करके बीज बोने के। स्थानीय किस्म में लगभग 32 प्रतिशत की उपज बढ़ी।

पशुओं में दुग्ध उत्पादन बढ़ाने हेतु काजरी पौष्टिक दाना पर गाँव दांतीवाड़ा में प्रशिक्षण आयोजित किये गये। प्रशिक्षण के द्वारा जो पौष्टिक दाना तैयार हुआ वह बकरी, गाय एवं भैंस को खिलाया गया। बकरी को 100 ग्राम दाना प्रति दिन एवं गाय एवं भैंस को 300 ग्राम प्रति दिन (150 ग्राम सुबह, 150 ग्राम शाम) खिलाया गया, जिससे बकरी में 2 महीने बाद 460 मि. लीटर, गाय में 860 मि.लीटर एवं भैंस में 950 मि.ली. प्रति दिन दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई। पशुओं को पौष्टिक दाना खिलाने से पाण में बढ़ोत्तरी हुई, स्वास्थ्य ठीक रहा एवं जो पशु हड्डी, प्लास्टिक खाते थे वो भी नियन्त्रित हो गये।

कृषिक महिला कार्यक्रम के अन्तर्गत महिला स्वंय सहायता को पशु पालन एवं उद्यमिता विकास हेतु प्रशिक्षण दिया गया यह प्रशिक्षण 7 गावों भैंसेर कोतवाली, बींजवाड़िया, डोली, दांतीवाडा, बोरावास एवं खोरवरिया में आयोजित किये गये जिससे उनके ज्ञान एवं दक्षता में वृद्धि हुई।

सम्पर्क सूत्र : **डा. वाई. वी. सिंह**

कृषक महिलाओं में उद्यमिता विकास

स्वयंसहायता समूह छोटे उद्यमियों की ऐसी संस्था है, जिनके सदस्य सामूहिक जिम्मेवारी तथा परस्पर सहमति से लधु उद्योग स्थापित कर आय अर्जन करते हैं। राष्ट्रीयकृत बैंक कम ब्याज ऋण उपलब्ध करवाकर तथा राज्य सरकार विभिन्न संसाधन उपलब्ध करवाकर सहयोग प्रदान करती हैं। महिलांए, पुरूषों की तुलना में, कर्ज वापसी में अधिक अनुशासित एवं प्रतिबद्ध होने से आज कुल कार्यशील स्वयसहायता में से 90 प्रतिशत से अधिक महिला स्वयसहायता समूह काये कर रहे। महिलाएं अपनी प्राकृतिक योग्यता से गाँव में उपलब्ध संसाधनों एवं उत्पाद से निम्नलिखित क्रिया–कलापों से अच्छी आय अर्जन कर सकती है।

किचन गार्डन : किचन गार्डन ग्रामीण महिलाओं के आय का सरल तरीका है। मरुस्थल में जहाँ, पानी की उपलब्धता की कमी है, वहीं घर के बेकार पानी का उपयोग किचन गार्डन में कर सकती हैं। घर के पिछवाड़े में मौसमी फल एवं सब्जियाँ लगाकर घर की पूर्ति के पश्चात् शेष बचे उत्पाद को बेच कर अच्छी कमाई कर सकती है।

नर्सरी : ग्रामीण महिलाएँ अपने परम्परागत ज्ञान को तकनिकी प्रशिक्षण से प्रवीणता लाकर घर के पास या अन्य खुल्ली जगह पर नर्सरी स्थापित कर सकती है। बाजार की मांग को ध्यान में रखकर वनोत्पादन, फल एवं फूल वाले पौधों की पौध प्लास्टिक थैलियों में तैयार करके निकटस्थ पंचायत, विद्यालय तथा अन्य गैर सरकारी/सरकारी संस्थाओं को बेच कर अच्छा धन कमाया जा सकता है। नर्सरी स्थापना हेतु राज्य सरकार कई अनुदान योजनाएं है, जिनका फायदा भी लिया जा सकता है।

खाद्य परिरक्षण : खाद्य परिरक्षण, महिलाओं के आय–अर्जन का परम्परागत तरीका है। मौसमी फल एवं सब्जी वाली फसलों के उत्पाद के आचार, जैम और जैली बनाकर। फल और सब्जियों को सुखाकर, बे मौसम में बेचकर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। अधिशेष दूध से पनीर एवं उत्पाद बनाकर। शादी–विवाह एवं सामाजिक मौके पर ग्रामीण महिलाएं केटरिंग जैसा व्यवसाय अपना कर अपने परिवार को आर्थिक सम्बल तो प्रदान करती है, साथ जीवन स्तर में आमूल परिवर्तन ला सकती है।

संपर्क सूत्रः **डा. अम्तुल वारिस**